॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

वर्ष १०] [संख्या २

राम रसायन तुम्हरे पासा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

वर्ष ६० } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, फरवरी १९८६ ई० { संख्या २
पूर्ण संख्या ७११

श्रीहनुमत्स्तवन

जयति विहगेस-बलबुद्धि-बेगाति-मद-मथन, मनमथ-मथन, ऊर्ध्वरेता ।
महानाटक-निपुन, कोटि-कविकुल-तिलक, गानगुण-गर्व-गंधर्व-जेता ॥

× × × ×

जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच, लोचन सजल, शिथिल वाणी ।
रामपद-पद्म-मकरंद-मधुकर, पाहि, दासतुलसी शरण, शूलपाणी ॥

कल्याण

जो मनुष्य सचमुच भगवान्‌के नामका आश्रय ले लेता है, वही भाग्यवान् है, वही सुखी है और वही सच्चा साधक है। जिसकी जीभ और चित्तवृत्ति भगवन्नाममें लगी है, वही साधु है, उसका जीवन धन्य है और उसका सत्संग सभीके लिये वाञ्छनीय है। जिसकी जिह्वा निरन्तर पतित-पावन हरिनामकी रट लगाती रहती है, वह चाण्डाल होनेपर भी सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि वही प्रभुका प्यारा है। भगवान्‌के नाम-कीर्तनसे केवल पापोंका नाश ही नहीं होता—पाप-नाशके लिये तो शास्त्रोंमें अनेक प्रायश्चित्त बतलाये ही गये हैं, नामका फल है पञ्चम पुरुषार्थ—श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति। पापनाश और मुक्ति तो नामके आनुषङ्गिक फल हैं, जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रकाश होता ही है।

नामसे सायुज्य मोक्षकी आकाङ्क्षा भी मिट जाती है; क्योंकि उस मोक्षमें प्रियतमके नाम-गुणका कीर्तन कहाँ! जैसे जगत्‌के प्रकाशक प्रभाकरके प्रकट होते ही जगत्‌का सारा अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही नामरूपी सूर्यके उदित होते ही पाप-समूह समूल नष्ट हो जाता है। भगवान्‌का नाम अज्ञान-समुद्रसे तारनेके लिये तरणीके समान है। ऐसे जगन्मङ्गलकारी हरिनामकी जय हो—**'जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम।'** भगवन्नामकी वास्तविक महिमा क्या है, इसे कोई कह नहीं सकता। वह अचिन्त्य है, अनिर्वचनीय है। नामकी महिमा भक्तलोगोंने जो गायी है, वह तो कृतज्ञ-हृदयके उद्गार-मात्र हैं, अर्थात् जिन महापुरुषोंको नामसे अशेष लाभ हुए हैं, उन्होंने उन अशेष लाभोंको लक्ष्यमें रखकर भगवन्नामकी महिमा गायी है। नामके विषयमें इसके आगे क्या कहा जाय, जैसा कि तुलसीदासजीने कह दिया है कि **'राम न सकहिं नाम गुन गाईं।'**

साधकको चाहिये कि वह व्यर्थका बोलना बंद कर दे और उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते जीभसे बराबर भगवान्‌का नाम लेता रहे। अपने जिम्मेका काम सब करे, पर कामभरको बोले और जीभको लगाये रखे—भगवान्‌के नाम-जपमें। व्यर्थ बोलना बंद कर देनेसे चार लाभ होते हैं—झूठ छूटता है, परनिन्दा छूटती है, व्यर्थकी चर्चा छूटती है तथा वाणीमें शक्ति आ जाती है और भगवन्नामके जपनेका पूरा अवसर मिलता है।

जिह्वाके दोषोंसे बचनेके लिये यह आवश्यक है कि हम अधिक समयतक मौन रहें और इस प्रकारकी प्रतिज्ञा अवश्य कर लें कि बोलना अनिवार्य हुए बिना बोलेंगे ही नहीं तथा वह भी आवश्यकता भर, अधिक नहीं और वह भी अच्छी तरह सोच-विचारकर जहाँ-तहाँ जैसे-तैसे नहीं। दूसरा यह निश्चय करें कि वाणी भगवान्‌का नाम लेनेके लिये मिली है, अतएव उसे बराबर भगवान्‌का नाम लेनेमें लगाये रखना है आवश्यकता होनेपर कम-से-कम बोलकर पुनः भगवान्‌का नाम लेना आरम्भ कर देना है।

वे लोग सचमुच बड़े भाग्यशाली हैं, जिन्हें बहुत कम बोलना पड़ता है और जो निरन्तर भगवान्‌का नाम लेते हैं। प्रातःकाल उठनेसे रात्रिमें सोनेतक जीभपर निरन्तर भगवान्‌का नाम आता रहे—इसकी पूरी चेष्टा करनी चाहिये। इससे अपने-आप बोलना कम हो जायगा और पर-चर्चाको अवकाश नहीं मिलेगा। भगवान्‌का नाम न भूले, भूल जाय तो इसके लिये खेद हो। भगवन्नाम-जप-कीर्तन करते समय उसे सुनते भी रहें। इससे मनको उसमें लगाना पड़ेगा; क्योंकि बिना मनको उसमें लगाये सुन न सकेंगे। यह मानसिक स्मरण है। इसका बड़ा महत्त्व है। —**'शिव'**

श्रीरामजन्म-भूमिका मुक्ति-संदेश

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

भगवान् रामकी यह उक्ति कितनी मार्मिक है—'जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है।' शास्त्रोंमें कहा है कि स्वर्गमें सर्वाधिक सुख-भोगकी प्राप्ति होती है, जो अपने शुभ कर्मोंके अनुसार प्राणीको मिलता है। अशुभ कर्मोंके अनुसार अर्थात् पाप करनेपर नरककी प्राप्ति होती है, जहाँ अत्यधिक दुःख और यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इस प्रकार पुण्यका ही फल स्वर्गलोककी प्राप्ति है, जिसके लिये सब लालायित रहते हैं। पर जन्मभूमि और जन्म देनेवाली जननीका सांनिध्य प्राप्त होनेपर स्वर्गका यह सर्वोत्कृष्ट सुख भी तुच्छ जँचता है। आज अपने देशवासियोंकी भी यही दशा है। अपने आराध्य भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमिके मन्दिरमें वर्षोंसे ताला लगा था, हम प्रवेशतक नहीं कर सकते थे, भगवत्कृपासे अब वह भूमि मुक्त हुई, ताला खुल गया। इस अवसरपर भारतवासियोंका आनन्दविभोर होना स्वाभाविक है; क्योंकि अब वे अपने आराध्यकी जन्मस्थलीपर जाकर दर्शन-पूजनके साथ दिव्य आनन्दानुभूति प्राप्त कर सकते हैं।

कहते हैं कि भगवान्‌की तरह भगवल्लोक और भगवद्धाम भी नित्य, शाश्वत और दिव्यानन्दसे युक्त हैं। इसलिये भक्तगण भगवद्धाममें ही निरन्तर निवास करना चाहते हैं, अन्यत्र कहीं रहना पसंद नहीं करते। संत गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने स्वयं भगवान् श्रीरामके शब्दोंमें अवधकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है—

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥

श्रीविष्णुपुराणके अनुसार स्वर्गलोकमें देवगण यह गीत गाते हैं कि वे धन्य हैं, जिनका जन्म भारतवर्षमें होता है—**'गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।'** वे यह गीत क्यों गाते हैं? इसलिये कि भारतकी इस पवित्र धरापर आज भी ऐसे दिव्य स्थल हैं, जो भगवान्‌की लीलाभूमि एवं जन्मभूमि हैं। ऋषि-महर्षि एवं शास्त्रोंके अनुसार साक्षात् परब्रह्म परमात्माका अवतरण भारतकी इस पवित्र भूमिपर होता है, जहाँ वे जगत्‌के प्राणियोंके उद्धारके लिये मनुष्य-रूपमें जन्म लेते हैं, क्रीडा करते हैं और अपनी लीलाओंसे सबको सुखानुभूति प्रदान करते हैं। भारतवासियोंके लिये ये स्थल अत्यधिक पवित्र हैं, जहाँ जाकर दर्शन-पूजन कर व्यक्ति स्वयंको कृतकृत्य मानता है। इन पवित्र और प्राचीन मूल स्थानोंकी सुरक्षाकी आज अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकारके महत्त्वपूर्ण मूल स्थान, जो भारतकी करोड़ों जनताकी भावनाओंसे संलग्न हैं, कालगतिके अवरोधसे किसी विशेष कारणवश अपने वास्तविक रूपसे दूर और असुरक्षित हो गये हैं—भले ही वे किसी भी धर्म और सम्प्रदायके हों, उन्हें अपने वास्तविक मूल रूपमें पुनः प्रतिष्ठित करना चाहिये, जिससे देशकी मूल संस्कृति और उसकी आध्यात्मिक भावनाको किसी प्रकारकी ठेस न लगे। (इसकी जिम्मेदारी देशकी जनता और सरकार दोनों पर है।)

पिछले पैंतीस वर्षोंसे अयोध्यामें भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमिपर ताला लगा था। अयोध्यानिवासी भक्तगण बाहर बैठकर इसके खुलनेकी प्रतीक्षा करते रहे। इसके निमित्त अखण्ड-संकीर्तन प्रारम्भ किया गया। सारी अयोध्यामें भगवन्नाम-स्मरणकी ध्वनि होने लगी। आज

इसी भगवन्नामस्मरण और अखण्ड संकीर्तनका यह चमत्कार है कि हमें आराध्य भगवान् श्रीरामकी जन्म-भूमिके, जो स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

आप भगवन्नामस्मरण और संकीर्तनकी धाराको बंद न होने दें । इसे निरन्तर अबाधगतिसे चलायें सारे विश्वका कल्याण इसमें निहित है ।

—सम्पादक

वेदोंमें संकीर्तन

(लेखक—श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

[गताङ्क पृ०-सं० ८० से आगे]

(२) रूप-कीर्तन

वेदका कथन है कि यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय तथा अवयव और शरीरसे रहित है, तथापि रूप-पिपासु उपासकोंकी रुचिके अनुसार विभिन्न रूप धारण कर लेता है—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥

(रामपूर्वताप० उप० १ । ७)

यह कृपासिन्धुकी कृपाकी पराकाष्ठा है; क्योंकि रुचि-वैचित्र्यकी कोई सीमा नहीं है । एक उपासक ब्रह्मको विकराल कालीके रूपमें देखना चाहता है तो दूसरा श्यामसुन्दरके सुकोमल सलोने लावण्यपर लट्टू है । कोई हजारों सिर-पैरवाले विश्वरूपमें रस लेता है, तो दूसरा अभिराम रामकी कमनीय कान्तिपर मर मिटनेको तैयार है । अपनी रुचि-वैचित्र्यको भी प्रेमी ही समझ सकता है । भगवान् प्रेमरूप हैं । वे ही प्रेमीकी अकुलाहट और छटपटाहटको समझते हैं और अपनेको उसकी रुचिके अनुरूप प्रस्तुत करते हैं । जिस रूपके दर्शनके लिये प्रेमी छटपटा रहा है, सिसक रहा है, सिसकते-सिसकते वेहोश हो रहा है और कराहते-कराहते होशमें आ रहा है, उसे दूसरे रूपकी दवा लगेगी क्या !

बिरह बान जेहि लागिया, औषध लगे न ताहि ।
सुसुकि-सुसुकि मर-मर जिये उठे कराहि-कराहि ॥

(साखी [illegible])

संतोंका अनुभव है कि दूसरे रूपकी दवा देना इसे छेड़ना ही है और इस छेड़छाड़को इसकी कोमल स्थिति सहन न कर सकेगी । वह वेचारा मर जायगा ।

राम बियोगी बिकल तन इन दुखवे मति कोय ।
छूअत ही मरि जायँगे तालाबेली होय ॥

(साखी ९८)

इस विरहीके वचावका एकमात्र उपाय है कि इसके मन-चाहे रूपका दर्शन मिल जाय । भगवान्को भक्तकी यह रुचि रखनी पड़ती है । यह है आप्तकामकी कृपाकी पराकाष्ठा । वे केवल रुचि ही नहीं रखते, अपितु अपने भक्तके लिये छटपटाते हैं, सिसकते भी हैं—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' । इसीलिये उपर्युक्त श्रुतिने कहा है—

उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ।

वेदोंने उपासकोंके इस रुचि-वैचित्र्यका पूरा-पूरा ध्यान रखा है । भिन्न-भिन्न रुचिकी पूर्तिके लिये भगवान्के भिन्न-भिन्न रूपका वर्णन किया गया है । यहाँ उदाहरणके रूपमें वनवासी रामके रूपका वर्णन किया जाता है—

प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा जटाधरः ।
द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः ॥
प्रसन्नवदनो जेता धृष्ट्यष्टकविभूषितः ।
[illegible] जगद्योन्याङ्किताङ्कभृत् ॥

हेमाभया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलजात्मजः॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः।
हेमाभेनानुजेनैव .... ॥

(रामपूर्वताप० उप० ३ । ७–१०)

भगवान्‌का रंग नीलकमल-जैसा श्याम है। ऐसा रंग किसी अन्य प्राणीका नहीं होता। अतः भगवान्‌का रंग ही सबसे पहले देखनेवालोंकी आँखोंको आकृष्ट कर अपनेमें चिपका लेता है। उनका पीताम्बर इस रंगको और निखार देता है। सिरके काले घुँघराले केश इसमें चार चाँद लगा देते हैं। कानोंमें झलमलाते हुए कुण्डल इसकी आरती उतारते हैं। आठों सिद्धियाँ चारों ओरसे इसे सँवारनेमें जुटी रहती हैं। बाँयीं ओर सीताजी-के और दाहिनी ओर लक्ष्मणके स्वर्णगौर वर्णोंसे भगवान्‌की श्यामलता और सुभग हो उठती है। उनके मुखपर छायी हुई प्रसन्नता अद्भुत मोहिनी डालती है। ऋग्वेद (१ । १५६ । २) ने भगवान्‌के लिये **'नवीयसे'** पदका प्रयोग किया है। इसका अर्थ है कि भगवान्‌का रूप नित्य नूतन बना रहता है— **'नित्यनूतनाय—अत्यन्तरमणीयायेत्यर्थः'**। (सायण)

उनका रूप कितना सरस है! और इसका वैदिक कीर्तन भी कितना सरस है। आँखें इस छविसिन्धुको देखकर और क्या देखना चाहेंगी? कान इसे पीकर और क्या पीना चाहेंगे? यह रोम-रोममें सिहरन और आँखोंमें पानी ला देता है। हृदयमें इतना उल्लास भर देता है कि वह छलके बिना नहीं रह पाता। बिना बाँटे यह आनन्द-भार हलका कैसे हो सकता है? इस स्थितिमें वाणीसे जो कुछ बरबस प्रकट होता है, उसका नाम रूप-संकीर्तन है। यह संकीर्तन कण-कणको आप्लावित कर देता है।

इस झाँकीमें लोने लक्ष्मणके साथ भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति भी तो सम्मिलित है। इस तरह वेदकी इस झाँकीमें तीनों ही सरकार हैं। अद्भुत छवि है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तीनों सरकारोंको अपने हृदयमें बसाते थे। शरभंग मुनिने यही वरदान माँगा, प्रेमी सुतीक्ष्णने यह याचना दो बार की[२] और रामरहस्यके महान् वेत्ता अगस्त्यजीने भी यही वर माँगा—

यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥

(मानस ३ । १३ । १०)

(३) लीला-कीर्तन

भगवान्‌की लीलाके सम्बन्धमें श्रुतिके दो आदेश हैं—

(१) लीलाओंको सदा दृष्टि-पथमें रखो तथा (२) उनका संकीर्तन करो। श्रुतिके शब्द हैं—

(१) विष्णोः कर्माणि पश्यत। (२) जातमस्य महतो महि ब्रवेत्। (ऋक्० १ । १५६ । २)

इन दोनों वाक्योंसे लीलाका संस्मरण और कीर्तनका विधान हुआ है। पहली विधिमें लीलाका संस्मरण मुख्य है और संकीर्तन सहकारी। दूसरी विधिमें संकीर्तन प्रधान है और संस्मरण सहकारी। दोनोंका सहभाव अपेक्षित है।

१–सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम। मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥
(मानस ३ । ८)

२–(क) तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी॥
(मानस ३ । ११ । १२)

(ख) अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम। मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥
(मानस ३ । ११)

पहली विधिमें बतलाया गया है कि भगवान्‌की लीलाओंको सदा ध्यानमें रखना चाहिये। कितनी भी उलझनें आयें, उनका विस्मरण न होने पाये—**'मामनुस्मर युद्ध्य च।'** भगवान्‌की सारी लीलाएँ अमानवताके विरुद्ध मानवताके त्राणके लिये होती हैं। ध्यानमें बनी रहनेपर ये लीलाएँ मानवको मानवताकी ओर उन्मुख करती रहती हैं और इधर बढ़नेकी सशक्त प्रेरणा देती हैं। वे चेतावनी देती रहती हैं कि 'तुम मानव हो, तुम्हारी अपनी वस्तु मानवता है, न कि दानवता; तुम्हारी इसी वस्तुकी रक्षाके लिये भगवान्‌का अवतार होता रहता है। इस मानवतामें तुम्हारे किसी कार्यसे ठेस नहीं पहुँचनी चाहिये। मानव होकर अपनी ही मानवताको घायल करना बहुत बड़ी नादानी है।'

(क) लीला-कीर्तनका विधान

'जातमस्य महतो महि ब्रवत्'—इस श्रुतिने लीला-संकीर्तनका विधान किया है; क्योंकि 'ब्रवते' लेट् लकारका रूप है, जिसका अर्थ 'विधि' होता है **'ब्रवीतेर्लेट्यडागमः'** (सायण)। **'लेट्'** लकारका प्रयोग केवल वेदमें होता है। सायणने **'ब्रवत्'** का अर्थ 'संकीर्तयेत्' किया है। अतः **'ब्रवत्'** का अर्थ होता है 'संकीर्तन करो।' पूरे वाक्यका अर्थ इस प्रकार है (**अस्य महतः**) इन महान् भगवान्‌के (**महि**) दिव्य (**जातम्**) जन्मोत्पत्ति-लीलाका (**ब्रवेत्**) संकीर्तन करो।

(ख) लीला-विधिकी उपेक्षासे चिन्तनीय स्थिति

लीला-संकीर्तन-सम्बन्धी श्रुतिकी यह विधि इस दृष्टिसे अधिक महत्त्व रखती है कि इसके द्वारा अपने लाभके साथ-साथ दूसरोंको भी लाभ पहुँचाया जा सकता है। इसे सुनाकर दूसरोंका ध्यान भगवान्‌की ओर केन्द्रित कराया जा सकता है; क्योंकि सुनकर जाना जाता है और जानकर उसे किया जाता है। प्राचीन समयमें सभी जगह कोई-न-कोई कथा अवश्य चला करती थी। लोग उसे सुनते थे और वह अपने-आप जीवनमें उतरने लगती थी। इस तरह उन दिनों जनताद्वारा श्रुतिके दोनों आदेशोंका पालन हो जाया करता था और साथ ही मानवताको संरक्षण अपने-आप प्राप्त होता रहता था; किंतु लगभग ढाई हजार वर्षोंसे इस पद्धतिमें शिथिलता आती गयी। बाहरी आक्रमणोंने भारतीयोंको कई दृढ़ घेरोंमें विभक्त कर दिया और ये घेरे विश्वमें और विस्तार पाते गये। आज इन घेरोंमें श्रुतिके आदेश पहुँच नहीं पाते। तत्पश्चात् जडवादके विकासने जनताको अपनी ओर उन्मुख कर लिया। धीरे-धीरे भगवान्‌के कीर्तनके रिक्त स्थानपर जडवादका कीर्तन आरम्भ हो गया। इस गुणगानसे जडवादको भरपूर प्रोत्साहन मिला। परिणाम जैसा ध्वंसक होना चाहिये था, वैसा ही हुआ। आज सारी जनता विनाशके कगारपर खड़ी है। आज जडवादने वैज्ञानिकोंके हाथोंको आणविक हथियारोंसे लैस कर दिया है और इनके पैरोंको उपग्रहपर टिका दिया है। किसी देशकी त्रुटिसे सम्पूर्ण मानवसमाजका विनाश उपस्थित हो गया है। यह है भगवान्‌के सतत-स्मरण और संकीर्तनके अभावका दुष्परिणाम।

(ग) लीला-संकीर्तन इस स्थितिसे रक्षा कर सकता है

लीला-संकीर्तनका विधान करनेवाली उक्त श्रुतिने अपनी पहली अर्धालीमें चार लीलाओंका सूत्ररूपमें निर्देश किया है—

यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे···।

(१) **'वेधसे'** से भगवान्‌की विलक्षण सृष्टि-लीलाका कीर्तन, (२) **'पूर्व्याय'** से अजन्माके जन्मकी लीलाका कीर्तन, (३) **'नवीयसे'** से नवनवायमान सौन्दर्य-लीलाका कीर्तन, (४) **'सुमज्जानये'**से आनन्द-दान-लीलाका कीर्तन विहित है।

(१) विलक्षण सृष्टि-लीलाका कीर्तन

श्रुतिके 'वेधसे' पदका सायणने 'विविधसृष्टिकर्त्रे' अर्थ किया है । अर्थात् भगवान् एक ही प्रकारकी सृष्टि नहीं रचते । उनकी शक्ति असीम है, जिससे वे भिन्न-भिन्न प्रकारके जगतोंका निर्माण करते हैं । न्यायदर्शनके अनुसार वरुणलोकमें जलीय शरीर, आदित्यलोकमें तैजस शरीर और वायुलोकमें वायवीय शरीर होते हैं । आजका विज्ञान यहाँतक पहुँच तो नहीं पाया है, किंतु ऐसी सम्भावनाओंको नकारता नहीं है; क्योंकि आजके विज्ञानको प्रतिकणोंकी जानकारी हो गयी है । वह यह मान चुका है कि जितने ही कण होते हैं, उनके प्रतिकण अवश्य होते हैं ।

विज्ञान सत्यकी खोजमें लगा है । ज्यों-ज्यों इसकी योग्यता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों यह जगत्‌की छिपी हुई भिन्न-भिन्न विलक्षणताओंको प्रकट करता जा रहा है । पहले विज्ञान एक ही आकाशगङ्गाको देख पाता था, अब यह दस आकाशगङ्गाओंको देखता है । पहले एक सूर्य देख पाता था, अब इस सूर्यसे भी सैकड़ों गुने बड़े सूर्योंको देखता है । इस तरह विज्ञानके इस शुक्लपक्षका स्वागत होना चाहिये ।

आजके मानवोंने अन्धविश्वास करके भगवान्‌को हटाकर उनके स्थानपर जो इसको बैठा दिया है, यह ठीक नहीं हुआ है । इसीका परिणाम है कि वैज्ञानिकोंने इसके कृष्णपक्षका भी वरण कर लिया है और मानव ध्वंसके कगारपर खड़ा है ।

ऋग्वेदमें बतलाया गया है कि प्रलयके समय ब्रह्मके अतिरिक्त परमाणु आदि कोई पदार्थ न था[१] । उस समय शक्तिके साथ केवल ब्रह्म था—'आनीदवातं स्वधया तदेकम् ।' (ऋक्० १० । १२९) । ब्रह्मने अपनी इसी शक्तिको महत्तत्त्व, अहं-तत्त्वके क्रमसे परमाणु-तन्मात्राओंके रूपमें परिणत कर दिया ।[२]

(२) अजन्माके जन्मकी लीलाका कीर्तन

(पूर्व्यस्य)···महि जातं ब्रवत् ।

ऋग्वेदने भगवान्‌के लिये 'पूर्व्याय' पदका प्रयोग किया है । पूर्व्यका अर्थ होता है, जो सबसे पहले हो, अनादि हो । जिसका जन्म न हो, वह सबसे पहले नहीं हो सकता; क्योंकि उसका जनक उससे पहले रहता है । अतः 'पूर्व्य' शब्दका अर्थ होता है 'अजन्मा ।' अब इस 'पूर्व्य' शब्दको 'महि जातं ब्रवत्' से सम्बद्ध करके अर्थ किया जाय तो इसका अर्थ होता है कि 'अजन्माके दिव्य जन्मका कीर्तन करो ।' सुनते ही वदतो-व्याघात-सा प्रतीत होता है । बुद्धिमें यह बात उतर नहीं पाती ।

सिद्धान्तमें अजन्माकी यह दिव्य जन्म-लीला अतीव हृदयावर्जक अद्भुत रससे ओत-प्रोत है । प्रेमरूप परमात्माके उमड़ते हुए प्यारका प्रत्यायक है । सबसे उठे हुए और सबसे गिरे हुए लोगोंके लिये एकमात्र यही रस एवं उन्नयनका आधायक है । इस लघुकलेवर लेखमें इसपर प्रकाश डालनेका अवकाश नहीं है । यहाँ इतना बतलाना आवश्यक है कि 'कोरी बुद्धि' इस तत्त्वको कभी नहीं समझ सकती; क्योंकि वह स्वतः जड़ है । बुद्धि समझ तब सकती है, जब यह योग्य चेतनसे सम्बद्ध हो जाय । प्रसंग सीता-हरणके बादका है । सरकार रो-रोकर पेड़-पौधोंसे सीताका

१–तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास । (ऋक्० १० । १२९ । २) अर्थात् इससे भिन्न कुछ न था ।

२–पूर्वं ह्येकमेवाद्वितीयं ब्रह्मासीत्, तस्मादव्यक्तं तस्मादक्षरान्महान्, महतो वा अहंकारः, तस्मादेवाकारात् पञ्चतन्मात्राणि···। (गोपालोत्तरतापिनी उप० १७)

पता पूछ रहे थे । भगवान् शिवने उन्हें 'जय सच्चिदानंद जग पावन' कहकर प्रणाम किया । दर्शनसे जो आनन्द उमड़ा, वह रोके रुक न रहा था । वह रोम-रोमसे फूट रहा था और आँखोंमें छलछला रहा था । दोनों दृश्य देखकर सतीजीकी बुद्धि चकरायी । ब्रह्म तो 'आनन्दमय' होता है और यह राजकुमार तो 'शोकमय' है ! ब्रह्म 'ज्ञानमय' होता है और इसे तो सीतातकका पता नहीं ! अज्ञान इतना कि पेड़-पौधोंसे पूछ रहा है । यह भी नहीं समझता कि ये जड़ हैं, ये क्या बतलायेंगे ।

सतीजीका मन इस तरह संकल्प-विकल्प कर रहा था और बुद्धि कोई निर्णय नहीं दे पा रही थी । दयालु शंकरने सतीका यह संशय समझ लिया और बिना पूछे ही उसे मिटाना चाहा; क्योंकि संशय प्राणीको खा जाता है । सती फिर भी कोरी बुद्धिपर ही विश्वास टिकाये रहीं । परिणाम बुरा हुआ ।

दूसरे जन्ममें भी इस संशयने उनका पीछा न छोड़ा । वे कोरी बुद्धिके आश्रयणका दुष्परिणाम जान चुकी थीं । इस बार **'प्राप्य वरान् निबोधत'** इस श्रुतिने आश्रयण किया । अपनी बुद्धिको शंकरजीसे सम्बद्ध कराया और तब उनकी बुद्धिने अजन्माके जन्मका अद्भुत रहस्य समझा । इस रहस्यके समझनेसे उन्हें परम आनन्द मिला—

स्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर ।

अजन्माके जन्मके कीर्तनका यह मधुर परिणाम निकला ।

(३) 'नवीयसे'—नित्यनूतन सौन्दर्य-लीला

पहले लिखा जा चुका है कि भगवान् सौन्दर्यके सागर हैं । जैसे असंख्य जल-बिन्दुओंके समूहको सागर कहते हैं, वैसे ही अनन्त सौन्दर्य बिन्दुओंके समूहको सौन्दर्य-सागर कहते हैं । इस सौन्दर्य-सागरकी एक बूँदके कणसे विश्वकी सारी सुन्दरताएँ बनी हैं—**'यस्य मात्रामुपादायान्यानि भूतानि जीवन्ति।'** इस पद्धतिसे भगवान्के असीम सौन्दर्यका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है । ऋग्वेदने **'नवीयसे'** कहकर इस सौन्दर्यकी कुछ और अलौकिक विशेषता बतलायी है, जो सांसारिक सुन्दरतामें सम्भव नहीं है । **'नवीयसे'**का अर्थ है कि भगवान्की सुन्दरता क्षण-क्षणमें नयी-नयी होती रहती है । सायणने **'नवीयसे'**की व्याख्यामें **'नित्यनूतनाय'** लिखा है । समुद्रकी लहरें प्रत्येक बार नयी-नयी ही उठा करती हैं, किंतु यह नवीनता भासित नहीं होती । लहरें नयी हैं, परंतु सुन्दरता नयी नहीं है । बार-बार पहले तरंगकी तरह ही रहती है । अत: पहली बार जो आकर्षण होता है, वही रह जाता है । तरंगोंके नयापनके साथ आकर्षणमें नयापन नहीं आता ।

यही कारण है कि यह नवनवायमान सुन्दरता बड़े-बड़े ब्रह्मनिष्ठोंको भी खींच लेती है । शुकदेवजी-जैसा जन्मना ब्रह्मनिष्ठ कौन होगा ? भगवान्की सुन्दरताने उन्हें भी खींचा । जनक जन्मजात वैरागी थे । जैसे कमलके पत्ते जन्मसे ही जलसे निर्लिप्त रहते हैं, वैसे ब्रह्माजीने जनकको जन्मसे ही निर्लिप्त बनाया था—

जे बिरंचि निरलेप उपाए । पदुम पत्र जिमि जग उपजाए ॥
(मानस २ । ३११)

परंतु जब उन्होंने राम-लक्ष्मणकी सुन्दरता देखी, तब टकटकी लग गयी । इतना आनन्द उमड़ा कि ब्रह्मानन्द भी फीका पड़ गया—

इनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा ॥

(मानस १ । २१६ । ५)

भगवान्‌की यह सुन्दरता ब्रह्मानन्दमें प्रेमानन्द ला देती है, जिससे उसमें हिलोरें उठने लगती हैं । इस तरह जनकका अनुराग 'अति अनुराग' बन गया । ब्रह्मका 'सुख' 'अतिसुख' बन गया ।

आजके मानवोंको ऋग्वेदका संदेश है कि 'अपरिमित आनन्दके लिये आनन्दघनकी ओर मुड़ो ।' जडवाद यह तुम्हें दे न सकेगा । एक तो इनका सौन्दर्य इतना क्षुद्र है कि उस सौन्दर्य-सिन्धुकी एक बूँदके किसी कणके किसी हिस्सेसे बना है । दूसरे, तन्मयता, चिन्मयता, नित्यनूतनता, आनन्दघनता, प्रेममयता इसमें सम्भव ही नहीं है ।

(४) 'सुमज्जानये'-आनन्ददान-लीलाका कीर्तन

'सुमज्जानये'का विग्रह है—**सुष्ठु मदयति= हर्षयतीति—सुमता=आह्लादिनी शक्तिः, सा जाया यस्य सः सुमज्जानिः, तस्मै ।'** इस विग्रहसे यह **'सुमत्'** शब्द भगवान्‌की अन्तरङ्ग आह्लादिनी शक्तिका वाचक है; क्योंकि यह कभी लक्ष्मी, कभी सीता, कभी राधा बनकर भगवान्‌को प्रेमका आस्वाद देती है । दूसरी ओर अपने जीव-बच्चोंको सतत आनन्दका घूँट पिलाया करती है । इस शक्तिकी कृपाके बिना कोई जीव भगवान्‌का प्रेम नहीं पा सकता । प्रेममें आकर्षण होता है, अतः प्रेमी अपने प्रेमपात्रके चारों ओर चक्कर लगाया करता है । यह आकर्षण अणुसे लेकर स्थूल पिण्डोंतकमें विद्यमान है । यह **'सुमत्'** शक्ति ब्रह्मसे भिन्न नहीं है; क्योंकि शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेद माना जाता है । यह ब्रह्मस्वरूपा ही है । इसीलिये आनन्द और प्रेम ब्रह्मका स्वरूप है—**रसो वै सः** (तैत्तिरीय ७) ।

ऋग्वेदने कीर्तनके लिये जो चार लीलाओंका निर्देश किया है, वह आज जडवादी विश्वके लिये बहुत हितकारी है । पहली लीलाने जनताको समझाया कि यह अद्भुत निर्माण-क्रिया न तो कलके हिरण्यकशिपुसे सम्भव था और न आजके जडवादसे । अतः जडवादका पल्ला छोड़कर भगवान्‌की ओर बढ़ो । दूसरी लीलाने यह बतलाया कि वह आप्तकाम, सर्वशक्तिमान् अजन्मा होकर भी इतना दयालु है कि अपने जनोंके लिये वाराह, कच्छ और मत्स्यतक बनकर हमारे बीच आ जाता है । तीसरी लीलाने सूचित किया कि सबसे उठे हुए लोगोंके आनन्द इसके बिना 'अति आनन्द' न हो पाते । इसी तरह सबसे गिरे हुए लोगोंको इसके बिना कौन उबारता ? चौथी लीलाने समझाया कि समुद्रकी तरंगें जैसे एक-दूसरेसे प्यार करती हैं और उनके अस्तित्वके लिये अपनेको निछावरकर समुद्रमें मिल जाती हैं, वैसे तुम भी प्रत्येक प्राणीसे प्यार करो, दूसरेके लिये अपनेको उत्सर्ग कर दो ।

वेदोंमें संकीर्तन-ही-संकीर्तन है । समूची ऋक्-संहिता संकीर्तन ही है । इसमें स्तवन-ही-स्तवन है और स्तवनका अर्थ होता है—गुण-संकीर्तन । वेदोंमें नाम-कीर्तन भी पग-पगपर है । कठोपनिषद्‌ने (२ । १४ में) कहा है कि सभी वेद भगवान्‌के नामके कीर्तनसे भरे हैं—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति ।

(समाप्त)

तैत्तिरीय आरण्यकमें विहित वेद-संकीर्तन

(लेखक—श्रीसुब्राय गणेशजी भट्ट)

'वेद' श्रीभगवान्‌के स्वाभाविक निद्रा (समाधि) में गतागत पावन श्वास-प्रश्वाससे उद्भूत पवित्र मन्त्रोंके समुदाय हैं। **'मन्त्रात्मानो देवताः'**—विष्णु-रुद्र आदि देवगण मन्त्रोंकी आत्मा कहे गये हैं। प्रकारान्तरसे प्रत्येक वेदमन्त्र देवताओंके नाम-गुण-कीर्तनसे युक्त है। यों तो सभी वेदाक्षर विष्णु-नाम-रूपमय हैं—**'यावन्ति वेदाक्षराणि तावन्ति हरिनामानि'** (सिद्धान्तकौमुदी)। इस प्रकार एक बार एक वेदका पूर्ण पाठ करें तो कई लाख हरिनाम स्मृत हो जायँगे। ब्रह्मचारीको उपनयनके बाद प्रतिदिन वेदाध्ययन—वेदका पाठ अवश्य करना चाहिये, उसे छोड़ देनेपर दोषभागी होना पड़ेगा। वेदपाठको श्रुतिमें स्वाध्याय या ब्रह्मयज्ञ नामसे अभिहित किया गया है—

'ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्यमाणः प्राच्यां दिशि ग्रामाद् बहिर्दिशि उदीच्यां प्रागुदीच्यां वोदित आदित्ये दक्षिणत उपवीयोपविश्य' 'दर्भाणां महदुपस्तीर्योपस्थं कृत्वा'... दक्षिणोत्तरौ पाणिपादौ कृत्वा'। (तै० आ० २। ११)

विद्वान् गृहस्थको प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयके बाद पूर्व, उत्तर या ईशान दिशाकी ओर गाँवसे बाहर (जहाँतक जानेसे घरका छत न दिखायी पड़े) जाकर दर्भासनपर प्राङ्मुख या उदङ्मुख बैठकर बायें पैरके ऊपर दाहिना पैर और बायें हाथके ऊपर दाहिना हाथ रखकर ब्रह्मयज्ञ करना चाहिये। **'मध्याह्ने प्रबलमधीयीत'**—दोपहरमें ऊँचे स्वरसे वेदपाठ करना चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन गाँवसे बाहर जाकर ब्रह्मयज्ञ करना बहुत सरल है।

नियमोंकी कठिनाईके कारण जब ब्रह्मचारिगण प्रतिदिन अधिक वेदपाठ करनेमें असमर्थ हो गये, तब शुचि नामक महर्षिके पुत्र शौच और अह्नि माताके पुत्र आह्नेय—दोनोंने ब्रह्मयज्ञके नियमोंमें परिवर्तन किया।

'ग्रामे मनसा स्वाध्यायमधीयीत। दिवा नक्तं वा इति ह स्माह शौच आह्नेय उतारण्येऽबल उत वाचोत तिष्ठन्नुत व्रजन्नुतासीन उत शयानोऽधीयीतैव स्वाध्यायं तपस्वी पुण्यो भवति॥' (तै०आ० २। १२)

'अशक्त हों तो घरपर ही रहकर दिन और रात दोनों समय मानसिक पाठ कर सकते हैं। सशक्त हों तो अरण्यमें बैठकर, उठकर, भ्रमण करते हुए, सोकर, मनसे, ऊँचे स्वरसे या किसी स्वरसे ब्रह्मयज्ञ करना ही चाहिये'.... ऐसा क्रम बतलाया। तबसे ब्रह्मयज्ञको संकीर्तन-का स्वरूप प्राप्त हुआ, वेद-भक्तोंको तृप्तिका अनुभव होने लगा और तन्मयता आने लगी—

'य एवं विद्वान् महारात्रे उषस्युदित व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानोऽरण्ये ग्रामे वा वसन् स्वाध्यायमधीते सर्वोंल्लोकान् जयति सर्वोंल्लोकाननृणो नु संचरति।' (तै०आ० २। १५)

तन्मयता आनेके बाद महात्मालोग निःसंकोच मध्यरात्रिमें, उषाकालमें, सूर्योदयके बाद आते-जाते, खड़े होकर, बैठकर, जमीनपर पड़कर, वनमें या गाँवमें जितना हो सका ऊँचे स्वरसे ब्रह्मयज्ञ करने लगे। व्रजाङ्गनाओंकी पराभक्तिका स्वाद लेने लगे। इन्होंने चौदह लोकोंमें विजय प्राप्त करके—

य एवं विद्वान् मेघे वर्षति विद्योतमाने स्तनयत्यवस्फूर्जति पवमाने वायावमावास्यायां स्वाध्यायमधीते तप एव तपस्तप्यते तपो हि स्वाध्याय इति। (तै० आ० २। १४)

श्रावण-भाद्रपदमें अमावास्याके आस-पास आकाश घने मेघोंसे आच्छादित होता है। मेघोंके परस्पर आकर्षणसे स्फोट होकर प्रचण्ड शब्द होता है। तब प्रचण्ड पवनका भी आगमन होकर शब्द बढ़ता है, विद्युत् चमकती है। ऐसे समयमें वेदपाठ वर्जित है। मनु कहते हैं—

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च सम्प्लवे।
आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत्॥
(४। १०१-३)

स्वाध्याय महान् तप है। पर सदा संकीर्तन करनेवाले भी परम धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, यदि शरीरमें रोमाञ्च एवं गद्गद स्वर हो जाय, आँखोंसे आँसू बहने लगें। प्रतिपत्, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्याकी तिथियोंको अनध्यायका नियम है। इन तिथियोंमें वेदका अध्ययन निषिद्ध है, पर ब्रह्मयज्ञ, स्तुति-कीर्तनादि नहीं। सायणाचार्यने वेद-भाष्यमें लिखा है—'ग्रहणाध्ययने यान्यनध्यायकारणानि तानि ब्रह्मयज्ञाध्ययने स्वाध्यायं न निवारयन्ति'। इस प्रकार संकीर्तन सदा चलता है। पुराण-पाठ भी चलते हैं।

संकीर्तनमें तुरीयावस्थामें पहुँच जानेके बाद पहलेका विधि-नियम, कालनियम, आसनादि नियम भी गौण हो जाते हैं; किंतु उसके कर्ताको स्वयं शुद्ध रहना चाहिये और करनेका स्थान भी शुद्ध रहना चाहिये—इन दो बातोंपर ध्यान रखना अनिवार्य है—'तस्य वा एतस्य यज्ञस्य द्वावनध्यायौ यदाऽत्माशुचिरशुचिश्च देशः।' अतः भगवन्नाम-संकीर्तन ही शरण है।

वैदिक एवं पौराणिक साहित्यमें संकीर्तनका माहात्म्य

(लेखक—डॉ० श्रीअतुलचन्द्र बनर्जी, एम्० ए० पी-एच्० डी० भूतपूर्व अध्यक्ष—संस्कृत-पालि-प्राकृत-विभाग, विश्वविद्यालय, गोरखपुर)

वैदिक परम्परामें परमात्माके विषयमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन विहित हैं—'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' (बृहदारण्यक २। ४। ५)। 'बृहद्धर्म-संहिताकार भी कहते हैं—

श्रवणादीनि कर्माणि विष्णोरेव करोति यः।
वत्सैष धर्मो द्रष्टव्यः श्रोतव्यादिश्रुतीरितः॥

यह विधान इस प्रकारके अन्य वचनोंसे भी समर्थित है।

वैसे वेदप्रोक्त स्तोभ, शास्त्र-गान इत्यादि सभी-प्रकारान्तरसे कीर्तनके ही भेद हैं। वैदिक श्रुतियाँ, सूक्त, स्तोम-स्तोत्र-गानादि स्वरोच्चारणादिके नियमों और देश-कालादिके विधानोंसे निबद्ध हैं, किंतु हरिनाम-संकीर्तनमें कोई ऐसा नियमन नहीं है। यह सभी बन्धनोंसे मुक्त और सर्वपाप-शामक है। भागवतकार कहते हैं—

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥
सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम्॥
(श्रीमद्भा० ६। २। १०, १४-१५)

ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे भी उत्तमश्लोक (विष्णु)-का नाम-संकीर्तन मनुष्योंके पापोंको जला देता है, जैसे अग्नि काष्ठको जला देती है—

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥

पूरे भागवतमें नामसंकीर्तन, व्याहरण, मन्त्रोदाहरण, कथन, उच्चारण, निगदन आदि पद निरन्तर प्रयुक्त होते हैं। उपर्युक्त कथनसे यह भी सुस्पष्ट है कि नामकीर्तन देश-कालादिके बन्धनसे मुक्त है और किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है, उसका फल अवश्यम्भावी है। ध्यातव्य है कि भागवतधर्म 'प्रोज्झितकैतव' आदि विषेषणोंसे व्याख्यात है। इसकी दो विशिष्ट अवस्थाएँ हैं। एक अवस्था है कर्म-समर्पणकी और दूसरी संकीर्तन-प्रधान भक्तिकी।

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें निमिसे पूछे जानेपर योगीन्द्र कविकी उक्ति है—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मत्तवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

'रथाङ्गपाणि (विष्णु) के सुमङ्गल जन्म और कर्मोंको, जो इस लोकमें किये गये हैं, सुनता हुआ और उनके नाम और गानोंको, जो तदर्थ (नामकर्मात्मक) हैं, गाता हुआ वह सर्वथा विलज्ज और सङ्गहीन होकर विचरण करता है। इस प्रकारका नियम माननेवालेका अपने प्रियनामके कीर्तनसे कृष्ण अथवा विष्णुमें अनुराग उत्पन्न होता है और उसके चित्तमें उच्चकोटिकी द्रुति उत्पन्न होती है। वह लोकसे विरक्त होकर उसके नियमोंका बहिर्भूत होकर उन्मत्तवत् कीर्तन करता है।' वस्तुतः भागवतकारद्वारा वर्णित हरिकीर्तनका यह स्वरूप वैष्णव-सम्प्रदायके अन्तर्गत नामकीर्तनका मौलिक स्वरूप है। चैतन्यमङ्गल, चैतन्य-चन्द्रोदय, चैतन्यचरितामृत नित्यानन्द-चरित आदिमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण-नाम सुनकर महाप्रभु चैतन्य एवं निताई भाव-विभोर—विक्षिप्त-से होकर नाचने-गाने लगते थे और उनके अनुयायी भी श्रीपादादिके प्राङ्गणमें इसी प्रकार उन्मत्तवत् नृत्य करते थे। यहाँतक कि व्रजमें वन्य व्याघ्रादि हिंस्र पशु भी प्रेमोन्मत्त होकर खड़े हो जाते, नृत्य करते, प्रेमोन्मत्त-से हो जाते।

नामकीर्तनके प्रसङ्गमें विष्णु आदि पुराणोंमें भी तथा भगवन्नामकौमुदी आदि प्रबन्धोंमें भक्तराज प्रह्लाद, ध्रुव, देवर्षि नारद, हनुमान् तथा अजामिल और सम्राट् भरतकी कथाएँ उल्लिखित हैं। विषम परिस्थितियोंमें भी नामग्रहणमात्रसे वैकुण्ठकी प्राप्ति अथवा भगवान्‌का दर्शन सुलभ है और इस संकीर्तनका माहात्म्य पद्म, नारद, विष्णु, स्कन्दादि पुराणोंमें यहाँतक माना गया है कि कलिकालका तो एकमात्र यही साधन और साध्य है।

आज इसका प्रचार भी अधिकाधिक होता जा रहा है। परिपूर्ण भावशुद्धि हो तो भगवत्कृपासे शीघ्र ही सभी प्रकारके कल्याण सम्भव हैं।

शिव नामकी महिमा

एक बार महर्षि लोमशजी नैमिषारण्य तीर्थमें शौनकादि ऋषियोंके यहाँ पधारे। ऋषियोंने उनका समुचित सत्कार किया। आतिथ्यके पश्चात् उन्होंने विस्तारपूर्वक शिवधर्म सुनानेके लिये लोमशजीसे प्रार्थना की। लोमशजीने उन्हें शिव-चरित्र सुनाते हुए शिव-पूजन-महिमाका गान प्रारम्भ किया। इसी प्रसङ्गमें उन्होंने कहा—

हरे हरेति वै नाम्ना शम्भोश्चक्रधरस्य च। रक्षिता बहवो मर्त्याः शिवेन परमात्मना॥

(स्कन्दपुराण, माहे०, केदार० ५। ९२)

'हे हरे! और हे हर! इस प्रकार भगवान् शिव और बिष्णुके नाम लेनेसे परमात्मा शिवने बहुतेरे मनुष्योंकी रक्षा की है।'

महर्षि लोमशने शौनकादि ऋषियोंसे भगवान् शिव एवं पार्वतीके विवाहका वर्णन कर लेनेके पश्चात् उनकी (शिवकी) नाम-महिमा इस प्रकार बतायी—

ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्त एव हि। द्व्यक्षरं नाम येषां वै जिह्वाग्रे संस्थितं सदा॥
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै। ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः॥

(स्कन्दपुराण, माहे०, केदार० २७। २२-२३)

'जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर सदा भगवान् शंकरका दो अक्षरवाला नाम (शिव) विराजमान रहता है, वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव'—इस अविनाशी नामका उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूपमें रुद्र हैं—इसमें संशय नहीं।'

आनन्दरामायणमें संकीर्तन-महिमा

(लेखक—पं० श्रीगिरधरजी शर्मा चतुर्वेदी, शास्त्री)

शतकोटि रामायणोंमेंसे वर्तमान युगमें उपलब्ध विविध रामायणोंमें आनन्दरामायणका स्थान महत्त्वपूर्ण है। इस रामायणमें कीर्तनकी महिमा बतलाते हुए लिखा गया है—

मन्त्रैः प्रबन्धैः काव्यैश्च स्तुतिभिः कीर्तनादिभिः।
प्राचीनैर्वा कल्पितैर्वा रामो गेयः सदा नरैः॥
येन केन प्रकारेण कार्यं राघवचिन्तनम्।
पापराशिः क्षणाद् दग्धः श्रीरामचिन्तनेन हि॥
भवत्यत्र न संदेहः पावकेन यथा कुटी।
दम्भेन वातिभक्त्या वा निष्कामाद् वा सकामतः॥
यद्यत्र राघवो गीतस्तेन पापं हुतं भवेत्॥
यथा वह्निस्तूलराशिं स्पर्शितः कामनां विना।
कामेन वा दहत्येव क्षणात् तद्वन्न संशयः॥

'मन्त्र, प्रबन्ध, काव्य, स्तुति, कीर्तन आदिके द्वारा चाहे वे प्राचीन हों अथवा कल्पित अर्थात् स्वरचित हों, मनुष्योंको सदा श्रीराम-नामका कीर्तन करना चाहिये। दम्भसे या परम भक्तिसे, निष्कामभावसे या सकाम-भावसे—जिस-किसी प्रकारसे भी श्रीरामका ध्यान करना चाहिये; क्योंकि श्रीरामके ध्यानसे निःसंदेह क्षणभरमें ही पापराशि उसी प्रकार भस्म हो जाती है, जैसे अग्निसे घास-फूसकी कुटी। यदि श्रीरामके नामका कीर्तन किया जाय तो वह निःसंदेह पापको उसी प्रकार जला देता है, जैसे इच्छा अथवा अनिच्छासे स्पर्श की हुई अग्नि क्षणमात्रमें रूईकी ढेरको भस्म कर देती है।' कीर्तनके लिये राम-मन्त्रकी महिमा प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

रामो गेयश्चिन्तनीयोऽत्र रामः
स्तव्यो रामः सेवनीयोऽत्र रामः।
ध्येयो रामो वन्दनीयोऽत्र रामो
दृश्यो रामः सर्वभूतान्तरेषु॥

'श्रीराम ही कीर्तन करनेके योग्य, चिन्तनीय, स्तवनीय, सेवनीय, ध्यान करने योग्य, वन्दनीय और समस्त प्राणियोंके भीतर दर्शनीय हैं।'

'राम'-मन्त्रके समान भगवान्के नाम-मन्त्रोंमें दूसरा मन्त्र नहीं है—'राम सकल नामन्ह ते अधिका' (मानस)। स्त्रियों एवं चारों वर्णोंको इसके कीर्तनका अधिकार है। कहा गया है कि किसी त्रास, बाधा या भय आनेपर अथवा महाघोर पाप करके भी जो प्राणी पश्चात्तापपूर्वक 'राम'-मन्त्रका कीर्तन करता है, उसकी शुद्धि हो जाती है। वैसे तो इस रामायणमें कीर्तनके लिये अनेक मन्त्र लिखे गये हैं; परंतु उनमें सबसे अधिक शक्तिशाली मन्त्र 'श्रीराम जय राम जय जय राम'को बतलाया गया है। इस मन्त्रका रूप इस प्रकार बनता है—श्रीपूर्वक राम शब्द रखकर पुनः राम रखे और दोनोंके मध्यमें जय एवं दूसरे रामके बाद दो जय जय और पुनः राम शब्द रखनेसे मन्त्र निष्पन्न होता है। इसके इक्कीस बार ही जप करनेसे कोटि द्विजोंकी हत्याका भी प्रायश्चित्त हो जाता है। तेरह अक्षरका यह 'राम-मन्त्र' विपुल कल्याणदायक है। इसका बार-बार जप और कीर्तन करनेका माहात्म्य है। वीणा आदिके स्वरके साथ सुन्दर स्वरसे इसका प्रीतिपूर्वक कीर्तन करना चाहिये। मन्त्रशास्त्रमें भी इसका उल्लेख है—

श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं
जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम्।
त्रिःसप्त कृत्वा रघुनाथनाम-
जपान्निहन्याद् द्विजकोटिहत्याः॥
त्रयोदशाक्षरश्चायं राममन्त्रः शुभावहः।
जपनीयः कीर्तनीयः सर्वदायं मुहुर्मुहुः॥
'श्रीराम जय राम जय जय राम' इति मनुः।

अयं मन्त्रः सुस्वरेण तथा वीणास्वरादिना।
कीर्तनीयो मुदा मर्त्यैर्मन्त्रशास्त्रेऽप्ययं स्मृतः॥

कीर्तन और जपके मन्त्रोंका भेद बतलाते हुए इस रामायणमें कहा गया है—

कीर्तनेऽस्य मनोर्नैव कार्यो न्यासो जपे स्मृतः॥

कीर्तनके मन्त्रोंका न्यास आवश्यक नहीं है, जबकि जपके लिये न्यास और ध्यान आवश्यक है। फिर **'जपं मानसे च'** के अनुसार जप मनमें किया जाता है एवं व्यक्तिगत रूपसे किया जाता है, जबकि कीर्तन उच्च स्वरसे गाकर किया जाता है और सामूहिकरूपसे किया जाता है। जपकी संख्या रखनेका भी नियम है, जबकि कीर्तनमें उक्त नियम नहीं है। अतः कीर्तनके प्रकारोंमें नाम-कीर्तन, रूप-कीर्तन, लीलाचरित्र-कीर्तन और धाम-कीर्तनमें नाम-कीर्तन सरल है। भगवद्-भक्तिकी प्राप्ति-हेतु नाम-संकीर्तन करना चाहिये।

इसी प्रकार इस रामायणमें **'राम जय राम जय राम जय'** मन्त्रका भी कीर्तनके लिये परामर्श दिया गया है और कहा गया है कि मन्त्र-शास्त्रमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सभी जप करनेके लिये हैं, परंतु उक्त मन्त्र कीर्तन करनेके लिये लिखा गया है।

इस प्रकार आनन्दरामायणमें कीर्तनके बीसों टेक, मन्त्रसहित उनकी अपार महिमा भी कही गयी है।

भगवन्नाम अमृत है मित्रो! इसका प्रतिपल पान करो

शुक, सनकादि, देवऋषि नारद पीकर इसको बने अजर।
मुनि मृकण्डसुत इसको पीकर हुए सदाके लिये अमर॥
शबरी, गणिका, गीध, अजामिल पीकर इसको गये सुधर।
ध्रुव, प्रह्लाद इसीको पीकर गये अगम भगसागर तर॥
प्रभुपद-पोत सुलभ कर इससे, तुम भवनीर-निधान तरो।
भगवन्नाम अमृत है मित्रो! इसका प्रतिपल पान करो॥ भगवन्नाम०॥

बने विज्ञ हनुमान्, विभीषण, वाल्मीकि इसको पीकर।
मीराँबाई विष-प्यालेको, घूँट गयीं इसके बलपर॥
शालग्राम बन गया तो उनको, काला नाग महाविषधर।
राणाका उद्योग विफल कर, मिले उन्हें प्रियतम गिरिधर॥
यह इतिहास श्रवण-पुटकोंमें, सुरसरि सलिल समान भरो। भगवन्नाम०॥

तुलसी, सूर, कबीर, तुकाको मिला इसीसे यश अक्षय।
नाभा, नानक, नरसी, नरहरि पीकर इसे रहे निर्भय॥
गुरु गोविन्दसिंहको इससे धर्मयुद्धमें हुई विजय।
श्रीचैतन्य महाप्रभु इसको पीकर हुए युगल-रसमय॥
यह पीयूष प्राप्त है तो मत काल-व्याल-भय मान डरो। भगवन्नाम०॥

धना भक्त, रविदास, सदन भी पीकर इसको बने बिमल।
पीकर यही मलूकदासका जगमें जीवन हुआ सफल॥
तुम भी बनकर "मित्र" परस्पर, विकसित कर लो हृदय-कमल।
ईर्ष्या-द्वेष-दम्भ-छल तजकर, खोजो भगवत्प्रेम अचल॥
भौतिक, दैविक औ' आध्यात्मिक ताप तथा अज्ञान हरो॥ भगवन्नाम०॥

क्या नाम-महिमा अर्थवाद है ?

(अनन्तश्री स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)

[गताङ्क पृ० १६८ से आगे]

यह सर्वथा स्पष्ट है कि स्मार्त प्रायश्चित्त और संकीर्तन-भक्ति मिल-जुलकर पापक्षयके साधन नहीं हैं। यदि यह मान लिया जाय कि एक विशेष प्रकारके अधिकारीके लिये नाम-संकीतन पापक्षयका साधन है और दूसरे प्रकारके अधिकारीके लिये स्मार्त प्रायश्चित्त साधन हैं तो व्यवस्था ठीक हो जाती है। अथवा इस प्रकार भी मान लें कि जिसकी रुचि हो, वह नाम-संकीर्तनसे प्रायश्चित्त कर ले और जिसकी उसमें रुचि न हो, वह स्मार्त प्रायश्चित्त कर ले। इस विकल्पसे भी संगति बैठ जाती है।

आगे यह दिखलाया जायगा कि ये दोनों बातें असंगत हैं; क्योंकि अधिकारीके कुछ विशेषण होते हैं। जैसे—वह अनुतप्त हो, अज्ञानी हो, श्रद्धालु हो, भक्त हो आदि। अधिकारीके इन विशेषणोंसे युक्त होनेपर ही कीर्तन पवित्र करेगा; किंतु तब वह निरपेक्ष साधन नहीं रहा, सापेक्ष साधन हो गया। आगे एक-एक अपेक्षाकी परीक्षा करके यह भी सिद्ध किया जायगा कि कीर्तन उन सबसे निरपेक्ष है।

रही बात विकल्पकी, सो सुगम साधनके रहते कठिन साधनमें किसीकी भी रुचि नहीं होगी। लघुके बदले गुरु कौन करेगा ? फिर तो स्मार्त प्रायश्चित्तका नितान्त बाध हो जायगा। स्मृतियोंमें किसी-किसी पापका प्रायश्चित्त बारह वर्षोंतक तप करना भी बताया है। नामकीर्तन सुगम एवं तत्काल पूर्ण हो जाता है। ऐसी स्थितिमें स्मार्त प्रायश्चित्त व्यर्थ हो जायँगे। यदि कहा जाय कि कीर्तन स्मार्त प्रायश्चित्तका खण्डन तो नहीं करता, जो चाहें सो करें; ऐसी स्थितिमें यदि दोनों आदेश समान हों और दोनोंका फल एक हो तो सुगमानुरागिणी इच्छाका कोई त्याग नहीं कर सकता; अतः दुष्कर मार्ग पोथियोंमें ही धरा रह जायगा। विधि-वचनोंका फल प्रवृत्ति है और किसी विधानमें लोगोंकी प्रवृत्ति होना भी एक प्रकारकी बाधा है'—ऐसा कुमारिल भट्टका कथन है। इस आपत्तिका निराकरण भी आगे किया जायगा।

केवल कृष्णानुस्मरण

अब व्यवस्थापर विचार करें। पता नहीं क्यों, कुछ सज्जन स्मृतियोंके प्रति बड़ा अनुराग रखते और पुराणोंसे डरते हैं। वे कहते हैं कि बड़े पापका बड़ा प्रायश्चित्त, छोटेका छोटा, जान-बूझकर कियेका बड़ा और अनजानमें कियेका छोटा, प्रकटका बड़ा, रहस्यका छोटा, स्मार्त प्रायश्चित्त बड़ा है और पौराणिक छोटा, ऐसी व्यवस्था कर लेनेपर स्मार्तोंको बड़ी प्रसन्नता होती है; किंतु थोड़ा भागवतके इन वचनोंपर भी ध्यान दीजिये—

पापे गुरुणि गुरूणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः।
प्रायश्चित्तानि मैत्रेय जगुः स्वायम्भुवादयः॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥

आशय यह है कि मन्वादि धर्माचार्योंने बड़े पापोंके लिये बड़े और छोटे पापोंके लिये छोटे तपःकर्मात्मक प्रायश्चित्तोंका उपदेश किया है; किंतु उन सब पापोंका एकमात्र सम्पूर्ण प्रायश्चित्त है—**श्रीकृष्णानुस्मरण।** यह वचन स्वमुखसे ही लघु-गुरु पाप-प्रायश्चित्तविषयक भेदभावका निराकरण कर केवल श्रीकृष्णानुस्मरणरूप प्रायश्चित्तका निर्देश करता है।

क्या कृष्णानुसरण निदिध्यासन है ?

एक दिन एक विद्वान् सज्जन, जो अपनेको ब्रह्म-विद्याका एकान्त पक्षपाती मान बैठे थे, बीचमें आ टपके और उन्होंने एक नया ही पूर्वपक्ष उपस्थित कर दिया । वे कहने लगे—'ठीक है, कौन ऐसा नहीं कहता कि श्रीकृष्णानुस्मरण महापातकादि प्रकीर्णपातकपर्यन्त समस्त पापोंका संहारक है; परंतु जानते हैं, वह कृष्णानुस्मरण क्या है ? वह ब्रह्मविद्या है । 'कृष्ण'का अर्थ होता है—अज्ञानका नाशक—**कृषति इति वा कर्षति इति वा कृष्णः** । वह पुराण-वचन तो बहुत प्रसिद्ध है, जिसमें 'कृष्'को सत्ता और 'ण'को निवृत्ति कहा गया है । दोनोंकी एकता अर्थात् परम ब्रह्म ही कृष्ण है । उस निरवद्य सर्वात्मा सदानन्द परमात्माका पुनः-पुनः चिन्तन ही कृष्णानुस्मरण है । सजातीय प्रत्ययकी आवृत्ति अथवा विजातीय प्रत्ययका तिरस्काररूप निदिध्यासन ही कृष्णानुस्मरण है । वह आत्मतत्त्वके साक्षात्कारके कारण श्रवणके प्रति फलोपकारक है । वही तत्त्वज्ञानके प्रतिबन्धक पापोंका प्रध्वंस करता है । निदिध्यासनद्वारा पापोंकी निवृत्ति होनेपर निष्प्रतिबन्ध तत्त्वज्ञानका उदय होता है । अतः कृष्णानुस्मरणका अर्थ निदिध्यासन है; नामसंकीर्तन नहीं ।'

मैंने उन्हें समझाया—'पण्डितजी महाराज ! आपने जो कृष्णानुस्मरणका अर्थ परब्रह्म परमात्माका निदिध्यासन किया, यह प्रसङ्गकी दृष्टिसे असंगत है । ठीक है, 'कृष्ण' शब्दका अर्थ ब्रह्म है, परंतु वह तमाल-श्यामल यशोदोत्सङ्गलालित कृष्णब्रह्ममें रूढ है । जहाँ रूढि-सिद्ध अर्थ होता है, वहाँ योग काम नहीं देता—यह प्रसिद्ध न्याय है । यदि व्युत्पत्ति-लभ्य यौगिक सदानन्द ब्रह्म अर्थमें ही आपका आग्रह हो तो मधुरस-सिन्धु-निमग्न गोपियों, भयानकभावभीषण पूतनादि शत्रुओं, बहिर्मुखचित्त ब्रजपशुओं, लता-वृक्षोंको भी निरन्तर अखण्ड मोक्ष-सुखका दान करनेवाले अनन्तानन्दस्वरूप गोपालशिरोमणि नन्दनन्दनका ही सर्वविध योग-वृत्तिसे ग्रहण होना चाहिये, निर्गुण ब्रह्मका नहीं ।

बार-बार ऐसा प्रयोग प्राप्त होनेके कारण 'कृष्ण' शब्दसे पहले नन्दनन्दनकी ही उपस्थिति होती है । उनका अनुस्मरण कीर्तन ही है, ध्यान नहीं । देखिये न, वाक्यशेषमें कीर्तनकी ही प्रशंसा की गयी है—

क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् ।
क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥

जहाँसे पुनर्जन्म होता है उस स्वर्गलोकमें जाना कहाँ और मुक्तिबीजरूप सर्वोत्तम वासुदेवका जप कहाँ ? यह अतुलनीय है । वह सोचना ही अयुक्त है कि विधान निदिध्यासनका हो और कीर्तनकी प्रशंसा की गयी हो ।

'विद्वद्वर ! फिर यह भी तो सोचिये कि क्या सर्वान्तर-प्रत्यग्वस्तु आत्मा कभी स्मरणके आँगनमें नाचनेके लिये उतरता है ? फिर तो उसका प्रत्यक्त्व ही व्याहत हो जायगा । प्रत्यग्वस्तुका ग्रहण उपाधि-निराससे होता है । अतः यहाँ नामोपाधिक स्मरण अर्थात् कीर्तन ही विवक्षित है । कीर्तनसे मनमें आये नाम-नरेश अघसंहारक होते हैं । ये ही नानाविध नरकयातनाकन्दोंके लिये कुदाल हैं । उन्हें लघु और गुरुका, छोटे कन्द और बड़े कन्दका कोई ध्यान नहीं ।' अतः नाम-संकीर्तनके लिये बड़े पापका प्रायश्चित्त स्मार्त और छोटे पापका प्रायश्चित्त नाम—यह व्यवस्था सर्वथा असंगत है ।

सब पातकोंसे मुक्ति

और भी देखिये—

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥

विवशतासे नाम-संकीर्तन करनेपर भी मनुष्य तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । यहाँ मूलमें जान-बूझ

कर 'सर्व' शब्दका प्रयोग किया गया है। उसका अर्थ है महापातक, उपपातक, प्रकीर्ण पातक; इन सभीसे मुक्ति मिल जाती है। उसमें भी विलम्ब नहीं होता—सद्यः= तत्काल। अतः कीर्तनके सम्मुख छोटे-बड़े पापोंका भेद करके संकीर्तनकी महिमाको संकीर्ण बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं। श्रीमद्भागवतमें ब्रह्मघात, सुरापान, गुरुतल्पगमन आदि महापापों तथा अन्य पातकोंके नाम गिनाकर कहा गया है कि चाहे किसी भी तरहका पापी हो, भगवन्नामोच्चारणसे उसके सभी पापोंका नाश हो जाता है **'सर्वेषामप्यघवताम्, सर्वपातकैः'**—इन शब्दोंके रहते कीर्तनकी शक्तिमें कोई संकोच करना न्याय नहीं। यह अज्ञानकृत अथवा रहस्यकृत पापके सम्बन्धमें भी नहीं है; क्योंकि अजामिल जानकार और जग-उजागर पापी था, फिर भी उसके पापनाशके प्रसंगमें ही तो यह नाम-महिमा है। विष्णुधर्मपुराणमें जान-बूझकर प्रकट रूपमें महापातक करनेवाले क्षत्रबन्धुके तत्काल परम पूत हो जानेका वर्णन है।

नाम-कीर्तन अधिकार-बन्धनसे मुक्त

किसी-किसीका मत है कि श्रद्धा-भक्तियुक्त प्राणी कीर्तनादिद्वारा पापक्षयका अधिकारी है और जिनमें वे नहीं हैं, वे स्मार्त प्रायश्चित्तके अधिकारी हैं। यहाँ यह विचारणीय है कि पहले श्रद्धा-भक्ति और बादमें पापक्षयके लिये कीर्तन, इसमें साध्य-साधन-भाव कैसा है ? जब हृदयमें श्रद्धा-भक्ति है, तब पाप कहाँ और पापक्षयके लिये कीर्तन क्या ? श्रद्धा-अश्रद्धा, भक्ति-अभक्ति—कैसे भी कीर्तन करो, पहला कीर्तन पापको नष्ट कर देगा और पुनः-पुनःका कीर्तन भगवद्वासनारूप श्रद्धा-भक्तिको जाग्रत् करेगा। लिंगपुराणमें कहा गया है कि एक बार **'ॐ नमो नीलकण्ठाय'**—इस मन्त्रका उच्चारणमात्र सर्वपापोंसे मुक्त कर देता है। यह कहना भी अयुक्त है कि जिसे अपने पापोंका पश्चात्ताप हो, वही नामोच्चारण करके पापमुक्त हो सकता है। भला, बतलाइये तो सही, कितना बड़ा पाप, कितना बड़ा पश्चात्ताप, कितना बड़ा नाम-संकीर्तन, यह नाप-तौल करता कौन फिरेगा ?

यदि यह माना जाय कि जबतक पापकी निवृत्ति न हो, अर्थात् फलकी प्राप्ति न हो, तबतक कीर्तन करना चाहिये तो वह भी ठीक नहीं; क्योंकि पाप और पापकी निवृत्ति प्रत्यक्षगम्य नहीं, शास्त्रैकगम्य है। शास्त्र कहता है कि संकेत, परिहास, टेक और तिरस्कारसे भी भगवान्‌के नामका स्मरण किया जाय तो सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। तब पश्चात्तापपूर्वक नाम लेनेसे ही पाप मिटते हैं, यह नियम कहाँ रहा ? जब 'राम-राम' कहनेसे क्या होगा' यह कहनेसे भी पाप मिटते हैं, तब पश्चात्तापपूर्वक नामोच्चारणसे पाप मिटते हैं, यह कल्पना झूठी है। परिहास और अनादरमें पश्चात्ताप या श्रद्धा-भक्ति नहीं होते। स्तोभ और संकेतमें तो ज्ञान भी नहीं होता। बार-बार 'सकृत्' शब्दका प्रयोग करके कहा जाता है कि प्रसंगवश उच्चारित नाम भी अघराशिका नाशक है। ऐसी स्थितिमें अधिकारीके सारे विशेषण उपेक्षित हैं और पापका नाश शास्त्रैकगम्य है।

आवृत्तिकी अपेक्षा नहीं

एक बारके नामोच्चारणसे ही पापक्षय हो जाता है, आवृत्तिकी भी अपेक्षा नहीं। माता सती अपने पिता दक्षकी निन्दा करती हुई कहती हैं—

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत्।
पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं
भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः॥

'भगवान् शिव परम मङ्गलमय हैं। उनकी कीर्ति जीवके अनर्थरूप भेदभावात्मक पवि अर्थात् वज्रसे रक्षा करती है और स्वमहिमामें प्रतिष्ठित करती है। ब्रह्मादि भी उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेमें समर्थ

नहीं हैं। उनका कितना प्यारा, कितना सुगम, कितना सुखोच्चार्य दो अक्षरका नाम है—शिव। उसमें श्रद्धा आदिकी अपेक्षा नहीं, केवल एक बार उच्चारण कर लीजिये। अनेक बार नहीं, केवल एक बार। हृदयसे अर्थका अवधारण हो या न हो, जीभसे बोलभर दीजिये तो वह तत्काल अर्थात् अपूर्वकी उत्पत्ति किये बिना छोटे-बड़े सभी पापोंको नष्ट कर देता है।' इसमें मनुष्य-मात्रका जाति-पङ्क्ति आदिका भेदभाव भी नहीं है। ऐसे शिवसे द्वेष करनेवाला अभूतपूर्व अमङ्गल है, इसमें कोई संदेह नहीं।

इन वचनोंका दूसरा तात्पर्य बताना अर्थात् ये श्रद्धा आदिकी अपेक्षाके निषेधक नहीं हैं, एक साहसकी बात है; क्योंकि ऐसे वचन बार-बार आते हैं और सभी शास्त्रोंमें मिलते हैं। अजामिलने कोटि-कोटि जन्मके पापोंका भी भोग अर्थात् प्रायश्चित्त कर लिया; क्योंकि भोग और प्रायश्चित्त दोनों-द्वारा समान रूपसे पापका नाश होता है, अतः भोग-वाचक 'निर्वेश' शब्दसे प्रायश्चित्त ही विवक्षित है। वह प्रायश्चित्त क्या है? विवश दशामें भगवान्के स्वस्त्ययन नामका उच्चारण। आप विवशतामें श्रद्धा-भक्ति ढूँढ़नेका प्रयास मत कीजिये। पापक्षय उच्चारणकर्तामें स्थित श्रद्धा-भक्तिका फल नहीं है, भगवन्नामका फल है। एक दूसरे श्लोकमें देखिये—

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥

अजामिल पापी था। पुत्रके लिये उच्चरित नाम नामाभास है। फिर श्रद्धाका प्रश्न ही नहीं उठता। जब उच्चारण किया तभी अर्थात् आवृत्ति नहीं है, पलव्यवधान नहीं है, केवल चार अक्षर (अक्षरोंका समाहार) पाप-नाशके लिये अधिक हैं। नामाभास भी समग्र पापक्षयका हेतु है। यह न तो **'आदित्यो यूपः'**-के समान प्रमाणान्तरसे बाधित है और न **'अग्निर्हिमस्य भेषजम्'**की तरह प्रत्यक्षादिसे सिद्ध। यह भी ध्यान रखने योग्य है कि प्रमाणान्तरसे सिद्ध और भूतार्थवादरूप अर्थवाद भी स्वार्थमें प्रमाण ही होता है। जैसे—हिमका औषध अग्नि और इन्द्रके हाथमें वज्र। अतः नाम-महिमाके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न शास्त्रोंमें सहस्र-सहस्र प्रमाण देख लीजिये।

जैसे ब्रह्मवस्तु दुर्बोध होनेके कारण बार-बार समझायी जाती है और वहाँ न कोई अर्थभेद है और न कोई दोष, वैसे ही नामके प्रसंगमें भी नामोच्चारण-माहात्म्यके एक होनेपर भी बार-बार दुहराना कोई दोष नहीं है; क्योंकि नाम अत्यन्त सुगम है, इसलिये पापी जनकी श्रद्धा इसपर टिकना कठिन है। वे सोचने लगते हैं कि इतना बड़ा पाप इतने सुगम प्रायश्चित्तसे कैसे दूर होगा? अतः उनकी अश्रद्धा नामके तिरस्कारमें हेतु बनती है। वह एक और पाप है, उसीको दूर करनेके लिये अनेक युक्तियोंद्वारा पुनः-पुनः बात समझायी जाती है और अनेक उदाहरण दिये जाते हैं। जैसे पाप कुहासा है तो नाम सूर्य, पाप ईंधन है तो नाम अग्नि, पाप रोग है तो नाम रोग-निवृत्ति-समर्थ महौषध अमृत।

कुछ लोग कहते हैं कि 'यह सच है कि नामके लिये पश्चात्ताप, श्रद्धा, भक्ति, आवृत्ति आदिकी कोई अपेक्षा नहीं; किंतु यह सब म्रियमाण अधिकारीके लिये है—मरणासन्न विवशतासे एक बार भी नामोच्चारण कर ले तो उसके अशेष पापोंका क्षय हो जाय।' किंतु ऐसा कथन उन लोगोंका है जो नामके प्रति श्रद्धालु तो हैं, पर वह श्रद्धा पूरी नहीं, अधूरी है, मध्यम कोटिकी है। उनकी श्रद्धाका खण्डन न कर इस सम्बन्धमें जो पारमार्थिक पथ है, उसका आगे निर्देश किया जा रहा है।

—(क्रमशः)

कलौ संकीर्त्य केशवम्

(लेखक—ज्योतिर्विद् पं० श्रीसुरेशचन्द्रजी ठाकुर, एम्० ए०)

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन च।
द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

'जो पुण्यकर्म सत्ययुगमें दस वर्षोंमें, त्रेतामें एक वर्षमें और द्वापरमें एक मासमें सफल होता है, वही कलियुगमें एक दिन-रातमें सफल हो जाता है। इसी प्रकार सत्ययुगमें ध्यान करके, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन करके और द्वापरमें भगवान्का पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वही फल कलियुगमें भगवान् केशवका कीर्तन करके पा लेता है।'

जो मनुष्य दिन-रात भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन करते हैं, उन्हें कलियुग कभी बाधा नहीं दे सकता। अतः कलियुगमें भगवान्के नामका कीर्तन करनेसे मनुष्य मुक्त हो जाते हैं। सकाम या निष्काम किसी भी भावसे 'नारायण'का कीर्तन करनेसे मनुष्य कलिजनित कष्टोंसे छुटकारा पा जाता है। अतः कलियुगमें नाम-संकीर्तनका विशेष महत्त्व सभी पुराणोंमें बताया गया है।

न्यूनातिरिक्तदोषाणां कलौ वेदोक्तकर्मणाम्।
हरिस्मरणमेवात्र सम्पूर्णत्वविधायकम्॥
हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥

'वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते समय जो कमी रह जाती है, उसकी पूर्तिके लिये कलियुगमें केवल भगवान्का स्मरण करना ही पर्याप्त है। जो लोग प्रतिदिन 'हरे! केशव! गोविन्द! वासुदेव! जगन्मय!' इस प्रकार भगवान्के नामोंका कीर्तन करते रहते हैं, कलियुग उन्हें बाधा नहीं पहुँचाता है। जो लोग कलियुगमें जनार्दन! जगन्मय! जगन्नाथ! पीताम्बरधर! अच्युत! आदि विष्णु-नामोंका सोते-बैठते, उठते, खाते-पीते या गिरनेपर, कष्ट आनेपर, चोट लगनेपर, दिनमें, रात्रिमें, संध्याकालमें, घरमें, वनमें, अर्थात् किसी भी जगह और प्रत्येक समय स्मरण एवं कीर्तन करते रहते हैं, उन्हें इस घोर कलियुगमें कोई कष्ट नहीं होता; परंतु कलियुगमें मनुष्य ईश्वरी मायासे मोहित होकर भौतिक सुखकी इच्छासे विषय-वासनामें ही लगे रहते हैं, उनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं रहतीं। जो इन्द्रियोंको वशमें करके एक बार भी भगवान्का नाम ले लेता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। पापकर्मपरायण तथा मानसिक शुद्धिसे रहित मनुष्योंका उद्धार केवल भगवान्के नामसे हो सकता है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

'कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्।'

अर्थात् और युगोंकी अपेक्षा कलियुगमें श्रीकृष्णका कीर्तन करनेसे ही मनुष्य आसक्तियोंसे छूट जाता है और उसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

पूजितो नमितो वापि संस्मरतो वापि मोक्षदः।
नारायणो जगन्नाथो भक्तानां मानवर्धनः॥

'भक्तोंका मान-सम्मान बढ़ानेवाले जगदीश्वर भगवान् नारायण पूजन, नमस्कार या स्मरण कर लेनेपर भी जीवको मोक्ष प्रदान कर देते हैं।'

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

अच्युत, अनन्त और गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, ऐसा नारदपुराणमें कहा गया है। जो मनुष्य अनादि, अनन्त, विश्वरूप, रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणका कीर्तन करता है, वह करोड़ों पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार कपासके ढेरको अग्निकी एक चिनगारी जला देती है, उसी प्रकार भगवान्

नारायणका नाम कीर्तन करनेवाले मनुष्योंके सभी पापोंको नष्ट कर देता है। अतः मनुष्योंको चाहिये कि इस घोर कलियुगमें लोभ और अभिमानको त्यागकर, काम-क्रोधसे रहित होकर सदा भगवान् विष्णुका कीर्तन करें, इससे पाप नष्ट होकर बुद्धि पवित्र होती है। जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्त हैं, उन सबमें भगवान् हरिके नामका कीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ है। पापकर्मका प्रायश्चित्त केवल भगवान् नारायणके नामसे हो जाता है। कहा है—

तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो मुने।
न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाखिलपातकः॥

अतः अहर्निश भगवान् विष्णुका स्मरण करते रहनेसे मनुष्योंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वे नरकको नहीं प्राप्त होते। नारदपुराणमें कहा है—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अर्थात् भगवान् विष्णुका नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।

वेदोंमें संकीर्तन

(लेखक—डॉ० श्रीशिवशंकरजी अवस्थी, शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद
ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥[1]
(ऋग्वेदसंहिता १। १५६। ३)

ऋग्वेद और अथर्ववेदमें भक्ति और भक्त शब्दोंका उल्लेख है। इन्हें ही परवर्ती भक्तिदर्शनके बीजरूपमें स्वीकार किया गया है। वहाँ अंशांशिभाव ही भक्ति और अंशभाव भक्तके रूपमें ज्ञापित है। सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्याविद् डॉ० आनन्दकुमार स्वामीने अपने 'वैदिक मनोथीज्म' लेखमें वैदिक भक्तिमार्गको समर्पणमार्ग या प्रेममार्गकी संज्ञा प्रदान की है। वेदोंमें भक्तिके विविध साधनोंका संकेत है। शाण्डिल्य-भक्तिसूत्रके प्रथम अध्याय, द्वितीय आह्निकमें एक सूत्र पठित है—**भक्तिः प्रमेया श्रुतिभ्यः।**

इसकी 'भक्ति-चन्द्रिका' व्याख्यामें नारायणतीर्थने ऋग्वेदसे नवधा भक्ति-सम्बन्धी मन्त्रोंको उद्‌धृत किया है। स्मरण और कीर्तनसे सम्बद्ध प्रस्तुत मन्त्र द्रष्टव्य है—

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां
क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास
उरुक्षितिं सुजनिमा चकार॥
(ऋ० ७। १००। ४)

'भगवान् विष्णुने इस पृथ्वीसे उपलक्षित तीनों लोकोंको भगवान्का स्मरण करनेवाले देवोंके निवासके लिये असुरोंसे छीनकर उन्हें देते हुए वामनावतारमें लोकोंका अतिक्रमण किया। इस विष्णुका कीर्तन करनेवाले लोग ब्रह्मलोक और परलोकके लाभोंको प्राप्त करके स्थिर हो जाते हैं।' वेदोंमें कीर्तन करनेवाले व्यक्तिके अर्थमें

---

१ (क)—स्तुति करनेवाले जनो! अनादिसिद्ध, नित्य, यज्ञरूपसे उत्पन्न उसी विष्णुको अपनी ज्ञान-शक्तिके अनुसार स्तोत्र आदिसे प्रसन्न करते रहो। यह चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है—ऐसा जानते हुए उस महानुभावके 'विष्णु' नामका कीर्तन करें (सायण)। (ख)—प्रसिद्ध जगत्‌के कारण एवं वेदान्तवाक्योंके प्रतिपाद्य परमात्माकी गुणोंके अनन्त होनेपर भी अपनी मतिके अनुसार जन्मभर स्तुति करते रहो। स्तुतिके असम्भव होनेपर परमात्माके नामका ही कीर्तन करो। हम स्वरूपज्ञ लोग गायत्री-मन्त्रमें कही गयी सुमतिकी—सर्वसाक्षिरूप, सच्चिदानन्दविग्रह परमेश्वरकी प्रेम-लक्षणा सेवा करते हैं। —नारायणतीर्थ

'कीरि', 'काक', 'गाथिन्' और 'उक्थिन्' आदि शब्द उपलब्ध होते हैं। **'कॄत संशब्दने** (चुरादिगण) धातुसे **'ल्युट्'** प्रत्यय, **'उपधायाश्च'**(पाणिनि० ७ । १ । १०१) सूत्रसे **'ऋ'**को **'इत्'** और उसका रपर होनेपर किर्त+ल्युट् **'उपधायां च'** (पा० ८ । २ । ७८) से **'इ'** को दीर्घ कर कीर्तन शब्द सिद्ध होता है। **'सम्'** उपसर्ग लगानेसे **'म्'**को अनुस्वार होनेपर संकीर्तन बनता है। इसका अर्थ है—सम्यक् कथन अथवा भगवान्के नाम-यश-कीर्ति आदिका सम्यक् उच्चारण । देवी-माहात्म्यके **'रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम'**—(अध्याय १२, श्लोक २२) श्लोककी शान्तनवी टीकामें लिखा है—**मम देव्याः जन्मनाम् उत्पत्तीनां ब्रह्माण्यादिशक्तिरूपेण प्रादुर्भावानाम् अवताराणां कीर्तनं कथनं कर्तृ।** जन्म अर्थात् मेरे ब्रह्माणी आदि अवतारोंका कथन। गीताके—

'स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या'— (११ । ३६)

—श्लोकमें आये हुए **'प्रकीर्त्या'** शब्दका अर्थ शंकराचार्य और मधुसूदन सरस्वती भगवान्के माहात्म्यका ही कीर्तन और श्रवण लेते हैं तथा नीलकण्ठ नामका कीर्तन ।

भक्तिचन्द्रिकामें उद्धृत ऋग्वेदके मन्त्रमें **'कीरयः'** शब्द पठित है । इसका अर्थ नारायणतीर्थने **'कीर्तनशीलाः'** लिखा है। ऋग्वेद, मण्डल २ अध्याय बारहके छठे मन्त्रमें **'नाधमानस्य कीरेः'** ऐसा पाठ है। सायणके अनुसार **'कीरि'** शब्दकी सिद्धि डुकृञ् करणे अथवा **'कॄत संशब्दने'** धातुसे होती है । मीमांसादर्शनकी मान्यता है कि गुण और गुणीके सम्बन्धका कीर्तन स्तुति है—**'गुणगुणिसम्बन्धकीर्तनं स्तुतिः।'** (न्यायसुधा, तन्त्रवार्तिक टीका) सामगान करनेवाले लोग सोम—(अर्क) का पूजन करें अथवा स्तोतालोग अर्क अर्थात् मन्त्रका उच्चारण करें । **'अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति।'** (यास्क, निरुक्त ५।४) 'अर्कका अर्थ है—मन्त्र; क्योंकि इसका उच्चारण कर लोग देवताकी अर्चना करते हैं।' **'अर्कं मन्त्ररूपं स्तोत्रम् अर्चाम पूजयाम उच्चारयाम इत्यर्थः ।'** (ऋ० ५ । ३१ । ५ पर सायण)

गाथा शब्द वाणीका पर्याय है। इसे सायणने साममन्त्र कहा है। सामगान करनेवालेको 'गाथिन्' कहते हैं—**'इन्द्र मिद् गाथिनो बृहत्।'**

(सामवेद २ । ९ । ५)

उद्गाता लोग बृहत् नामक सामके द्वारा इन्द्रकी ही स्तुति करते हैं। 'उक्थ' शब्द भी स्तुतिपरक है। यहाँ मन्त्रोच्चारणकर्ता 'उक्थिन्' शब्दसे कहा गया है। ऋग्वेदमें विष्णुका विशेषण 'उरुगाय' अधिक रूपमें मिलता है। इसे भागवतकार, श्रीतुलसीदासजी आदिने 'जयति जय उरुगाय' आदिमें बहुधा प्रयुक्त किया है। भाष्यकारोंने इसका अर्थ 'अनेक लोगोंसे कीर्तनीय' लिखा है ।

शाण्डिल्य-सूत्रके प्राचीन भाष्यकार स्वप्नेश्वरने कीर्तनके सम्बन्धमें लिखा है—**'तत्र नाम्नामभिधानं कीर्तनम्।'** (अ० २, आह्निक २, सूत्र ९८) **'सततं कीर्तयन्तो मां—'** (गीता ९ । १४) की व्याख्यामें आनन्दगिरिने लिखा है—**'कीर्तनं वेदान्तश्रवणं प्रणवजपश्च।'**

वेदान्तका श्रवण और प्रणव (ओंकार) का जप कीर्तन कहलाता है। मधुसूदन सरस्वती कहते हैं—

'प्रणवजपोपनिषदावर्तनादिभिर्मां सर्वोपनिषत्प्रतिपाद्यं ब्रह्मस्वरूपं कीर्तयन्तः।'

ऊपर आये हुए पाठके आदि शब्दकी व्याख्या करते हुए भाष्योत्कर्षदीपिकाकारने कहा है—**'उपनिषच्छ्रवणानन्तरमुपनिषद्भिर्हरे गोविन्दवासुदेवदामोदरमाधवमुकुन्देत्यादिनामभिश्च कीर्तयन्तः ।'** 'उपनिषदोंके श्रवणके अनन्तर उपनिषदोंके अभ्यासद्वारा और हरि, गोविन्द, वासुदेव आदि नामोंद्वारा कीर्तन करते हैं—**'स्तोत्रमन्त्रादिभिः कीर्तयन्तः।'**

इस प्रकार ये सभी कीर्तन हैं।

सुगमं भगवन्नाम

(लेखक—श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, साहित्याचार्य, एम्० ए०)

भगवान् व्यासने नरकगामियोंको धिक्कारते हुए कहा है—

सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी।
तथापि नरकं यान्ति धिग्धिगस्तु नराधमान्॥
(गरुडपु० प्रेतकल्प १ । ११)

'भगवान्‌का नाम सुगम है और जिह्वा भी अपने वशमें रहनेवाली है, फिर भी लोग नरकमें जाते हैं, ऐसे अधम मनुष्योंको बारंबार धिक्कार है।' इससे स्पष्ट है कि भगवन्नाम-कीर्तन करनेसे नरककी प्राप्ति नहीं होती। पापका प्रायश्चित्त यद्यपि दान और तपस्यासे हो जाता है, तथापि जो उन दोनोंके करनेमें अशक्त हैं, उनके लिये नाम-संकीर्तन सुलभ साधन है—

तपश्चर्तुमशक्तश्चेद् धनवान् दानमाचरेत्।
उभयोरप्यशक्तः सन् नामसंकीर्तनं चरेत्॥
(शाण्डिल्यस्मृति ९५)

फिर कलियुगमें तो कीर्तनका अत्यधिक महत्त्व कहा गया है। भगवान्‌का नाम-कीर्तन करनेवालोंको कलियुग बाधा नहीं पहुँचा सकता—

हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥

अहर्निश भगवन्नाम-संकीर्तनमें संलग्न देवर्षि नारदजीका तो यह स्पष्ट मत है कि कलिकालमें हरिके नामके स्मरणके अतिरिक्त दूसरी गति ही नहीं है। वही मेरे जीवनका आधार है। पद्मपुराणमें पृथु-नारद-संवादमें कहा गया है—एक बार नारदजीने भगवान्‌से पूछा—'भगवन्! आप कहाँ निवास करते हैं?' भगवान्‌ने उत्तर दिया—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

'नारदजी! न तो मैं वैकुण्ठमें वसता हूँ और न योगियोंके हृदयमें निवास करता हूँ, अपितु मेरे भक्त जहाँ मेरा गुणगान करते हैं, वहीं मैं रहता हूँ।' अतः स्पष्ट है कि जहाँ भगवन्नाम-संकीर्तन होता है, वहाँ भगवान् निश्चित रूपसे विराजते हैं। संकीर्तन भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है, अतः संकीर्तन करना चाहिये। विष्णुपुराणका कथन है कि सत्ययुगमें जो फल ध्यानसे, त्रेतायुगमें यज्ञोंसे और द्वापरयुगमें अर्चनासे प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केशव भगवान्‌के नाम-संकीर्तनसे प्राप्त हो जाता है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(६ । २ । १७)

अतः स्पष्ट है कि कलियुगमें भगवन्नाम-संकीर्तन महान् फलप्रद है। संकीर्तनके प्रभावके कारण वेदव्यासजी तो कलियुगसे अत्यधिक संतुष्ट हैं; क्योंकि इस अत्यन्त दुष्ट कलिकालमें यही एक महान् गुण है कि इस युगमें केवल श्रीकृष्णचन्द्रके नाम-संकीर्तनसे ही मनुष्य परमपदको प्राप्त कर लेता है। विष्णुपुराणमें मैत्रेय-पराशर-संवादमें पराशरजी वेदव्यासजीके विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं—

अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥
(६ । ३ । ३९)

साथ ही शान्तिकी लालसासे लिखे गये श्रीमद्भागवतका उपसंहार करते हुए भी उन्होंने इसी बातकी पुष्टि की है कि मैं उन परम तत्त्वरूप श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ, जिनका नाम-संकीर्तन समस्त पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है—

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

अतएव यह सुस्पष्ट है कि भगवन्नाम-संकीर्तन समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है और अति सुगम है । अतः हमें जिह्वाको व्यर्थकी चर्चामें न लगाकर भगवन्नाम-संकीर्तनमें लगाना चाहिये, जो इहलौकिक सुखका प्रदाता तो है ही, नरकसे भी बचाकर पारलौकिक सुखप्रद भी है ।

कीर्तनीयः सदा हरिः

(लेखिका—श्रीमती कनकलता गोस्वामी)

भगवान्की कृपाशक्ति अचिन्त्य एवं अति दिव्य है । महान् पापी भी यदि भगवान्को शरणदाता मानकर अनन्यचित्तसे पुकारता है या किसी बहाने परिहासमें, गीतके आलाप आदिमें या अवहेलनासे भी नाम लेता है तो उसके सभी पापोंका नाश हो जाता है । अनजानमें या जानकर उच्चारण किया हुआ श्रीहरिका नाम मनुष्यकी पापराशिको उसी प्रकार जला देता है, जैसे आग ईंधनको । जीवन्ती वेश्या केवल अपना समय काटनेके लिये ही शुकको श्रीराम-नाम रटाती थी । उसी रामनाम-शिक्षणके प्रभावसे ही उसे अन्तकालमें यमदूतोंसे मुक्ति और प्रभुके नित्य, अखण्ड धामकी प्राप्ति हुई । पापाचारी अजामिलको जब यमदूत लेने आये, तब वह अपने पुत्र 'नारायण'को आर्त स्वरमें पुकारने लगा । उसकी पुकार तो पुत्रके लिये थी, किंतु मात्र नारायण-नामोच्चारणसे ही उसे यमदूतोंसे मुक्ति मिली और वैकुण्ठ धामकी प्राप्ति हुई । शुकदेवजीने राजा परीक्षित्से कहा है—

नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।
न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥

(श्रीमद्भा० ६ । २ । ४६)

'जो लोग इस संसारबन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं उनके लिये अपने चरणोंके स्पर्शसे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले भगवान्के नामसे बढ़कर कोई और साधन नहीं हैं; क्योंकि नामका आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिरसे कर्मके पचड़ोंमें नहीं पड़ता । भगवन्नामके अतिरिक्त और किसी प्रायश्चित्तका आश्रय लेनेपर मन रजोगुण, तमोगुणसे ग्रस्त ही रहता है तथा पापोंका पूरा-पूरा नाश भी नहीं होता ।' जैसे कोई परम शक्तिशाली अमृतको उसका गुण न जानकर अनजानमें पी ले तो भी वह अवश्य ही पीनेवालेको अमर बना देता है, वैसे ही अनजानमें भी उच्चारण करनेपर भगवान्का नाम अपना फल देता ही है । वस्तुशक्ति श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करती । गज-ग्राहके प्रसंगमें जब गजराजने सर्वथा निर्बल होकर भगवान्को पुकारा, तब प्रभु उसी समय प्रकट हो गये तथा गज और ग्राह—दोनोंको अपने पवित्र दर्शनद्वारा इस संसारकी मोह-मायासे मुक्त कर अपने परमधामका अधिकारी बना दिया ।

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥

'जैसे अनिच्छासे भी स्पर्श करनेपर अग्नि जलाती ही है, उसी तरह दुष्ट मनुष्यके द्वारा भी स्मरण किये जानेपर श्रीहरि पापोंको नष्ट कर देते हैं । भगवन्नाम केवल पाप ही नष्ट करता है, ऐसी बात नहीं है, यह मोक्ष भी प्रदान करता है—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

'जिसने 'हरि' इन दो अक्षरोंका एक बार भी उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षके लिये कमर कस ली।' मोक्षके साथ ही यह धर्म, अर्थ, कामका साधन भी है। ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे त्रिवर्गसिद्धिकी प्राप्ति भी सिद्ध होती है—

न गङ्गा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्।
दुःखक्लेशपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

'जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर बसते हैं उसे गङ्गा, गया, सेतुबंध, काशी और पुष्करकी कोई आवश्यकता नहीं, उनकी यात्रा, स्नान आदिका फल भगवन्नामसे ही मिल जाता है। जिसने 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया उसने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदका अध्ययन कर लिया। 'हरि' ये दो अक्षर मृत्युके बाद परलोकके मार्गमें प्रयाण करनेवाले प्राणोंके लिये पाथेय हैं, संसाररूप रोगके लिये सिद्ध औषध हैं तथा दुःख-क्लेशसे रक्षा करनेवाले हैं।'

नाम-संकीर्तनमें कोई विशेष विधिनियम भी नियत नहीं है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजादयः।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज आदि जहाँ-तहाँ विष्णु भगवान्‌के नामका कीर्तन करते रहते हैं, वे भी समस्त पापोंसे मुक्त होकर सनातन परमात्माको प्राप्त होते हैं।' नाम-कीर्तनमें देश, काल आदिके नियम भी नहीं है—

न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते॥

हरिनाम-संकीर्तनमें देश, काल, शौच-अशौच आदिका निर्णय करनेकी आवश्यकता नहीं है। केवल 'राम-राम'-के संकीर्तनमात्रसे ही जीव मुक्त हो जाता है। यज्ञ, दान, कीर्तन, स्नान या विधिपूर्वक जपके लिये शुद्ध कालकी अपेक्षा है, किंतु भगवन्नाम-संकीर्तनमें काल-शुद्धिकी कोई आवश्यकता नहीं। चलते-फिरते, खड़े-सोते, खाते-पीते हुए भी कृष्ण-कृष्ण संकीर्तन करनेसे मनुष्य पापके केंचुलसे छूट जाता है। अपवित्र हो या पवित्र—सभी अवस्थाओंमें जो कमलनयन भगवान्‌का स्मरण करता है, वह बाहर-भीतरसे परम पवित्र हो जाता है।

पुष्टिमार्गके प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्यजीने भगवान् श्रीकृष्णको अपना धन, जीवन, परिवार—सभी कुछ समर्पित कर दिया था। आपने 'कृष्णाश्रय'ग्रन्थमें अपनी भावना यों व्यक्त की है—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥

इसलिये सर्वभावसे 'श्रीकृष्ण ही मेरे शरणदाता हैं' ऐसा निरन्तर कहते रहना चाहिये—ऐसा मेरा विचार है। भगवान्‌के नाम-कीर्तनमें ही यह फल है, ऐसी बात नहीं है, उनके स्मरण-श्रवणमें भी वही अनिर्वचनीय फल देनेकी शक्ति है। एक भक्तको किसी कारणवश कुछ समयके लिये नरकमें जाना पड़ा। वहाँ भी उसने अपने नित्यके स्वभावके कारण हरि-कीर्तन आरम्भ कर दिया। भक्तराजके मुखसे हरिभजन सुनकर नरकमें रहनेवाले सभी प्राणी तत्काल नरकसे मुक्त हो गये। भजनका प्रभाव ही ऐसा है। '**को न तर्‌यो हरि नाम लिएँ।**' पद्मपुराणकी शिवगीतामें कहा गया है—

आश्चर्ये वा भये शोके क्षते वा मम नाम वै।
व्याजेन वा स्मरेद् यस्तु स याति परमां गतिम् ॥
प्रयाणे चाप्रयाणे च यन्नामस्मरतां नृणाम्।
सद्यो नश्यति पापौघो नमस्तस्मै चिदात्मने ॥

'आश्चर्य, भय, शोक, क्षत अथवा किसी भी बहानेसे जो मेरे नामका स्मरण करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। मरते समय अथवा जीवित रहते जिसके नामका उच्चारण करनेवाले मनुष्योंके पापसमूह तुरंत नष्ट हो जाते हैं, उस चिदात्माको नमस्कार है।'

यज्ञ-यागादि रूप धर्म अपने अनुष्ठानके लिये जिस देश, काल, पात्र, सामग्री, शक्ति, श्रद्धा, मन्त्र, दक्षिणा आदिकी अपेक्षा रखता है, उसका इस कलियुगमें होना अत्यन्त कठिन है। भगवन्नाम-संकीर्तनके द्वारा उसका फल अनायास मिल जाता है।

भगवान्‌का स्मरण करनेसे भूत, वर्तमान, भविष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं—

वर्तमानं च यत् पापं यद् भूतं यद् भविष्यति।
तत्सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानलकीर्तनम् ॥

इसलिये भगवत्-जनको भगवच्चरणोंमें अधिकाधिक प्रीति प्राप्त करनेके लिये अहर्निश भगवान्‌के परम मधुर नामको जपते रहना चाहिये।

परम मधुर युगल नाम। राधेश्याम सीताराम।

जितनी अधिक निष्कामता होगी, उतनी ही नामकी पूर्णता प्रकट होती जायगी। कुछ लोग यह तर्क करते हैं कि नामकी महिमा वास्तविक न होकर अर्थवाद है। उन्हें यह विश्वास तो हो जाता है कि शराबकी एक बूँद भी पतित बनानेके लिये पर्याप्त है, पर यह विश्वास नहीं होता कि श्रीभगवान्‌का एक नाम भी परम कल्याणकारी है। शास्त्रोंमें भगवदुक्ति है—'जो मनुष्य मेरे नाम-कीर्तनके विविध प्रकारके फल सुनकर भी उसपर श्रद्धा नहीं करता उसे संसारके घोर तापोंसे पीड़ित होना पड़ता है।' आदिकवि वाल्मीकि मात्र 'मरा मरा' उल्टा राम-नाम जपनेसे अपने पूर्व जीवनसे, जो मानव-हत्याओंसे ओत-प्रोत था, मुक्त होकर विश्ववन्द्य हो गये। उनकी कृति 'वाल्मीकि-रामायण' अमर हो गयी। हरि-कीर्तन वह है जिसमें श्रीहरिके पवित्र चरित्रका गान हो। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लिखा है—

बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥

भक्तशिरोमणि व्यासजीने तो 'राधा' नामको ही परम धन माना है—

परम धन राधा नाम अधार।

शरीरसे भगवत्स्वरूप संसारकी सेवा और मनसे भगवान्‌का चिन्तन करे, यही परम साधन है। धन, उत्तम कुल, रूप, तपस्या, वेदाध्ययन, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पुरुषार्थ, बुद्धियोगादि गुणोंसे युक्त ब्राह्मणके लिये भी भजन आवश्यक है। जो ऐसा नहीं करता तो उससे वह चाण्डाल ही श्रेष्ठ है, जिसने अपना सर्वस्व प्रभु-चरणोंमें समर्पित कर दिया है। भक्त नरसी मेहताने ऐसे वैष्णवके दर्शनमात्रसे इकहत्तर कुल तर जाते हैं—ऐसा स्वीकार किया है—

भणे नरसैयो तेनुं दर्शन करतां कुल एकोतेर तार्यां रे।

मानवकी मानवता तभी सफल होती है, जब वह भगवत्प्राप्तिके साधनोंमें लगकर अपने जीवनको सर्वथा भगवदनुकूल बनाता है या चेष्टा करता है।

आत्माकी भाषा—संकीर्तन

(लेखक—साहित्य-वारिधि डॉ० श्रीहरिमोहनलालजी श्रीवास्तव, एम्० ए०, एल्० टी०, एल-एल्० बी०)

वेदोंका ज्ञान ईश्वरद्वारा ऋषियोंके हृदयमें उत्पन्न हुआ। आर्य-जाति या विश्व-इतिहासका सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद-संहिता' है। उसकी अनेक ऋचाओंमें विभिन्न वरदानोंकी प्राप्तिके लिये स्तुतियाँ पायी जाती हैं। 'स्तुति' से अभिप्राय है—'देवताओंकी शक्तिका परिचय पाकर उनकी प्रशंसा करना एवं उनके प्रति अनुराग प्रकट करना या उनसे अभ्यर्थना करना। एक पाश्चात्त्य विद्वान्के अनुसार 'इन स्तुतियोंद्वारा न केवल भारतीयोंका परवर्ती विकास समझा जा सकता है, अपितु इनसे पृथ्वीपर समस्त कल्पनाशील शक्तिके उत्पादनकी कुंजी भी प्राप्त होती है।'

वैष्णव पुराणोंमें सर्वाधिक महत्त्व श्रीमद्भागवतका है। इसमें परमानन्दपूर्ण ब्रह्मके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति है। साथ ही इन्द्र, ब्रह्मा और महेश्वर-जैसे देवताओं-की भक्ति-स्रोतस्विनीमें भी यह ग्रन्थ निमज्जित दिखायी देता है। सामान्य व्यक्तियोंके लिये भी भागवतका दिव्य संदेश है कि वे मन, वाणी और कर्मसे जो कुछ करें, उसे नारायणको अर्थात् श्रीकृष्णको समर्पित कर दें। भागवतने भक्तिका विशद विवेचन किया है। 'भक्ति'से अभिप्राय है—'भगवान्में पूर्ण विश्वास और उसके प्रति नित्य नया प्रेम होना।' भक्तिको हम 'सेवा' और 'समर्पण'का पर्यायवाचक कह सकते हैं; परंतु भक्त प्रह्लादके अनुसार भक्तिके नौ सोपान हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन। 'रामचरितमानस'में भगवान् श्रीरामने शबरीको जो नवधा भक्तिका उपदेश दिया है, उसमें क्रमकी विभिन्नता अवश्य है; परंतु भक्तिके सभी मूल तत्त्वोंका समावेश तो है ही।

जहाँतक कीर्तन या संकीर्तनका सम्बन्ध है, उसका अभिप्राय है—'ईश्वर अथवा उसके अवतारोंके रूपमें आराध्यदेवके नामका जप या भजन करना तथा स्तुति अथवा यशोगान करना।' इस प्रकार कीर्तन या नाम-संकीर्तनके दो रूप हैं—ऐकान्तिक तथा सामूहिक। जप, गान या कीर्तन विरामके साथ कुछ अन्तरालसे हो सकता है और निश्चित समयके लिये अखण्ड रूपसे भी। इस प्रकार नाम-संकीर्तनके विविध प्रकार और विविध स्वरूप हैं। जप, भजन, स्तुति, प्रार्थना, वन्दना, स्तवन या स्तोत्र—ये सब कीर्तनके ही नाम हैं। भक्तिके सबसे सरल रूप 'श्रवण' के बाद दूसरा स्थान 'कीर्तन'का हैं। प्रथम सोपान है—केवल कानोंसे प्रभुके नाम या हरि-कथा (पाठ, प्रवचन या व्याख्यान)का श्रवण। दूसरा सोपान है—उनकी महिमाका वर्णन करना और अकेले या समुदायके बीच सस्वर गान करना। भक्तिके इस दूसरे अङ्गका विवेचन ही हमें इष्ट है।

संसारके सभी धर्मशास्त्रोंने मानव-देहको उत्कृष्ट—किंवा देवदुर्लभ माना है। उपासना सगुण ब्रह्मकी हो या निर्गुणकी, मानव-जीवनकी सफलताके लिये वह आवश्यक है। जहाँतक विश्वके आस्तिक मत-मतान्तरोंकी बात है, प्रायः सभी ईश्वरके नामकी महिमा स्वीकार करते और गाते हैं। मन्त्रोंमें अपार शक्ति है और वह शब्द-ब्रह्म या नाद-ब्रह्मके समक्ष श्रद्धावनत है। आर्य-जातिके यज्ञ-विधानसे पर्यावरणकी शुद्धि तो कम-से-कम असंदिग्ध है। देवोंकी प्रसन्नताका अनुभव तो वे ही लोग करते आये हैं, जिनका जीवन भगवत्कृपासे रस-सिक्त रहा है। वैज्ञानिकोंकी विश्लेषणात्मक तर्कबुद्धि यह भी स्वीकार करती कि कीर्तनके शब्दोंसे वायुमण्डलमें जो

कम्पन होगा, वह दूर-दूरतक प्रभावोत्पादक रहेगा। यह नाम-संकीर्तनकी उपयोगिता, विश्वमङ्गलको लक्ष्य बनाती है। इसीलिये न केवल वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि विभिन्न सम्प्रदायोंमें संकीर्तनका प्रचलन रहा है, अपितु सभी समाजों और धर्मोंने कीर्तनपर किसी-न-किसी रूपमें आस्था प्रकट की है। भक्तों और संतोंने मुक्तकण्ठसे कीर्तनकी महिमा गायी है।

भक्तिके नौ अङ्गों या साधनोंमेंसे किसी एकको भी अपना लेनेसे जीवको निश्चय ही भगवत्कृपाके वर्षणका अनुभव होता है। कीर्तनके द्वारा भक्त भगवान्‌की कृपाका आह्वान करता है। श्रवण-कीर्तनादिसे साधकका चित्त शुद्ध होता है और उसमें प्रभुके प्रेमका बीज स्थापित होता है। कलियुगमें तो कीर्तन-जैसे सुगम साधनकी विशेष महिमा है। तभी तो तुलसीदासजीने कहा है—'भगवद्-भजन बिना संसार-समुद्रसे तरा नहीं जा सकता।' अनजानमें भी प्रभुका नाम लिया जाय तो पाप और क्लेशसे मुक्तिका मार्ग प्रशस्त होता है। जान-बूझकर शुद्ध भावसे भगवान्‌का कीर्तन करनेवाले पुरुषोंके पाप उसी प्रकार जलकर नष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्निमें ईंधनका तिरोभाव होता है। सार रूपमें संकीर्तनसे मानव-जीवनको शान्ति, आह्लाद, सफलता और उत्कर्षकी प्राप्ति होती है।

मनुष्य मुक्तिकी चाहसे भी कीर्तन करें तो उनके आचार-विचार क्रमशः शुद्ध होंगे और अन्ततोगत्वा उनका जीवन सुधरेगा ही; किंतु भगवान्‌को अपना वह दास अत्यन्त प्रिय है, जिसे उनके अतिरिक्त कोई अन्य आश्रय नहीं और जो किसी सांसारिक वस्तुकी कामना नहीं करता। निष्काम प्रेमपूर्वक भगवद्भजनके प्रभावको जो जानता है, वह एक क्षणके लिये भी भगवान्‌को नहीं भूलता और भगवान् भी उसे नहीं भूलते। वैष्णवाचार्योंके मतसे दास्य-रति भगवद्भक्तिका प्रारम्भिक सोपान है। भक्त जब अपनेको सेवक और इष्टदेवको स्वामी मानकर सेवामें दत्तचित्त होता है, तब उसके मनमें अपनी किसी भी वस्तु—यहाँतक कि शरीर, मन, बुद्धि—पर भी कोई अपनापन नहीं रह जाता—फिर वह सेवा तथा शक्तिका अभिमान भी कैसे कर सकता है। श्रीहनुमान्‌जी दास्यभक्तिके परम आदर्श हैं। भक्त भगवान्‌में एकाकारता या जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेता है, परंतु सेव्य-सेवक भावसे श्रीरामके प्रति समर्पित होकर और अपनी शक्तिको उन्हींकी कृपा या प्रेरणा मानकर हनुमान्‌जीने मुक्तिकी अपेक्षा भक्ति—अनपायिनी भक्तिको ही माँगा। उच्च कोटिके नैष्ठिक भक्त श्रीहनुमान्‌ने श्रीराम-नामको अपना जीवन-सर्वस्व—महामन्त्र मान रखा है। वे स्वयं श्रीराम-नाम-संकीर्तनमें मग्न रहते हैं और जहाँ-कहीं भी श्रीरामका कीर्तन या किसी भी रूपमें उनका स्मरण होता है, वहाँ वे हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। हनुमान्‌जीने दास्य-भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीरामको वशीभूत कर लिया है।

महाराष्ट्रमें समर्थ गुरु रामदासने और बंगालमें स्वामी विवेकानन्दने भक्ति और शक्ति, ज्ञान और त्यागकी आदर्श मूर्ति रामदूत हनुमान्‌की पूजाके यथेष्ट प्रचारकी कामना की। दक्षिण भारतमें भी तो श्रीरामनाम-संकीर्तनका व्यापक प्रचार देखकर श्रीरामकृष्ण-मठमें श्रीरामनाम-संकीर्तनके पूर्व श्रीमहावीरकी आराधनाका नियम बना हुआ है। हनुमान्‌जी सप्त चिरंजीवियोंमें हैं और संकीर्तन-भक्तिसे अमर हुए हैं।

भक्तिकी लहर दक्षिणकी ओरसे तब आयी, जब शंकराचार्यने बौद्धों और जैनोंके साथ संघर्ष किया और वैदिक-संस्कृतिके लिये एक नये संकटकी ओर भी ध्यान दिया। विशिष्टाद्वैतके प्रचारक रामानुजाचार्यने (सन् १०३७ से ११३७ के बीच) सेवा और प्रेमकी प्रतिष्ठा की। ग्यारहवींसे सोलहवीं शताब्दीके

बीच मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य नामक महान् दार्शनिकोंके विभिन्न सम्प्रदायोंने अपनी-अपनी विचारधारासे भक्तिकी जो धारा प्रवाहित की, वह उत्तर भारतमें बढ़नेवाले मुस्लिम अत्याचारोंका प्रतिरोध करनेमें समर्थ हुई। सन् १३०० तक भारत मुसलमानोंकी विनाश-लीलाका अनुभव कर चुका था। तभी महान् सुधारक रामानन्दजीने (लगभग १२९९ से १४१० ई० के बीच) भक्ति-आन्दोलनको बड़े वेगसे तमिलनाडसे लाकर समस्त उत्तर भारतमें प्रसारित किया। उन्होंने जनभाषाका उपयोग करते हुए सभी जातियों और धर्मोंको बिना भेदभावके श्रीराम-नामका माहात्म्य समझाया। रामानन्द-आन्दोलन राम-भक्तिशाखा, कृष्ण-भक्तिशाखा एवं नाथ तथा सहज परम्पराओंसे उद्भूत निर्गुणवादी शाखा—तीन शाखाओंमें विभाजित हुआ। तुलसीदास और सूरदास-जैसे अनेक कवियोंने श्रीराम और श्रीकृष्णके शील-सौन्दर्य और शक्ति-प्रधान आदर्श चरित्रोंके गुणगानसे हिंदू जनताको आशा बँधायी और उसमें नये प्राण फूँके।

जयदेवने बारहवीं शताब्दीके अन्तमें ही 'गीत-गोविन्दकाव्यम्' की रचना की थी। उसमें गीत-नाट्य, संगीत, लोक-प्रदर्शन एवं नृत्यके तत्त्वोंके साथ राधा और गोपियोंके प्रेमकी पीरका अद्भुत समावेश है। 'गीतगोविन्द'ने जहाँ विद्यापति और चण्डीदासको प्रभावित किया, वहीं चैतन्य महाप्रभु (सन् १४८५ से १५३३) और वल्लभाचार्य (जन्म १४७९ ई०) से भी भरपूर सराहना पायी। जयदेवने जिस संगीत-लहरीको उठाया, वह व्रजभाषाके कवियोंमें भली-भाँति प्रतिध्वनित हुई। वल्लभाचार्यके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथने श्रीनाथजीकी आठ झाँकियोंमें नियमित कीर्तनके लिये अष्टछापके कवियोंकी नियुक्ति की।

यों तो आदिकालसे अनेक विभूतियाँ और साधारण मानव कीर्तनद्वारा अपनी वाणीको पवित्र करनेमें और जीवन सार्थक बनानेमें लगे रहे हैं; परंतु पिछली कुछ शताब्दियोंमें संकीर्तनका सर्वश्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत किया श्रीचैतन्य महाप्रभुने। प्रेम और भक्तिसे प्रदीप्त उनके तेजोमय मुखसे कीर्तनके उमड़ते हुए स्वर लोगोंको श्रद्धा-भक्तिसे आत्म-विभोर कर देते थे। वे रोते हुए कहते—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥
(चै० शिक्षा० ६)

'प्रभो! आपकी परम स्वतन्त्रा उस कृपादेवीकी ऐसी कृपा मुझपर कब होगी कि आपका नाम ग्रहण करते समय मेरे नेत्र अश्रुधारसे, मेरा मुख गद्गद वाणीसे और मेरा शरीर पुलकावलियोंसे व्याप्त हो जायगा।' महाप्रभुपर भगवत्कृपाकी ऐसी ही वर्षा हो चुकी थी और वे अपने चरणोंमें शीश झुकानेवाले लाखोंको उस कृपासे रस-सिक्त कर रहे थे। उनका आदर्श अमरत्वको प्राप्त कर चुका है।

रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्णका संकीर्तन व्रजभूमिमें ही नहीं, समस्त उत्तरभारतमें व्याप्त हो गया। आचार्य विनोबाके लेखानुसार—'महाराष्ट्रमें पंढरपुरके भगवान् विठोबाकी भक्तिका बहुत प्रचार है। उनके दर्शनके लिये भक्तलोग व्रत-उपवास करके भजन-कीर्तन करते हुए सैकड़ों मीलोंसे पैदल आते हैं। उनकी इस यात्राको 'वारी' कहते हैं और यात्री 'वारकरी' कहे जाते हैं। ये दृढ़तासे कीर्तनके नियमोंका पालन करते हैं।' संत ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ और नामदेव-जैसोंकी साधनाका ही यह सुफल है। गुजरातके नरसी मेहता तो भजन-कीर्तनमें सुध-बुध खो चुके थे। इस श्रेष्ठ भक्तका महामन्त्र था—

'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे।'

इस प्रकार संकीर्तनकी धारा अविच्छिन्न रही है। सभीने उसे जीवमात्रके लिये सरल साधन ठहराया है। हिंदुओंके शास्त्रों और महात्माओंने तो उसे कलियुगमें मानव-कल्याणका मुख्यतम एवं सर्वसुलभ उपाय माना है। आजके भारत और विश्वके विषम अशान्त वातावरणमें जब मानव आस्थाके संकटसे गुजरते हुए चारों ओर मानसिक और शारीरिक हिंसाकी लपटोंसे व्यथित होकर शान्तिकी खोजमें व्याकुल है, तब संकीर्तन इस मार्गका पहला मील-स्तम्भ है। तभी तो भौतिक चकाचौंधसे त्रस्त पाश्चात्त्य भी संकीर्तनकी महिमा जान-समझकर 'हरे राम हरे राम, हरे कृष्ण हरे कृष्ण' का उद्घोष करते दिखायी देते हैं। इसके सामूहिक संकीर्तनके प्रचार-प्रसारसे अखिल जगत्में वास्तविक कल्याण सुनिश्चित है। सद्भाव और सौहार्दसे विश्व-शान्ति भी सुदृढ़ होगी।

भक्तिका अमोघ साधन—संकीर्तन

(लेखक—डॉ० श्रीनारायणदत्तजी शर्मा, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

[गताङ्क पृष्ठ-सं० २०६ से आगे]

संकीर्तनके भेद

सभी संकीर्तनोंका एकमात्र उद्देश्य प्रभुप्रेमका उद्रेक ही है; परंतु शैली, गति, मनोरथ, उत्सव और विषयादिके आधारपर संकीर्तनके अनेक भेद-प्रभेद किये गये हैं। इन सबमें नाम-कीर्तन ही प्रधान है। भगवान्के गुण, रूप, लीलाओंके गानकी परम्परा भी बहुत पुरानी है और उनका भी उतना ही महत्त्व है। नाम-संकीर्तन, पद-संकीर्तन, व्यास-संकीर्तन, द्रुत-संकीर्तन, विलम्बित-संकीर्तन, मङ्गल-संकीर्तन, प्रभावी आदि संकीर्तनोंके कुछ विशेष प्रकार हैं।

नाम-संकीर्तन

नाम-संकीर्तनमें भगवान्के नाम नारायण, वासुदेव, गोविन्द, श्रीराम, श्रीकृष्ण, माधव, मुरारि आदिका लयध्वनिके साथ उपगायन होता है। भगवान्के निर्गुण और सगुण रूपोंमें उनके रूपकी पहचान नामद्वारा ही होती है, अन्यथा भटकता मन निरवलम्ब ही रहता है। 'सूरदासजी कहते हैं—

> 'रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु
> निरालंब मन चकृत धावै।'

इन नामोंमें भगवान् स्वयं प्रकाशित हैं। उन नामोंमें उन स्वरूपोंकी सर्वशक्तियाँ स्थापित हैं; क्योंकि शक्ति और शक्तिमान्में नित्य अभेद है। अतः नाम और नामीकी तदात्मकता है। उन्हें समान समझनेसे विशेष प्रेमका उदय होता है। नाम-कीर्तनसे प्रभुकी शक्तियाँ उनके समान ही कल्याणकारी होती हैं। श्रीरामकी प्राप्ति अति दुर्लभ है; परंतु उनका नाम-कीर्तन सर्वसुलभ है। उसमें वर्ग, जाति, लिङ्ग, सम्प्रदायका कोई व्यवधान नहीं है। इसी कारण गोस्वामी तुलसीदासजी रामनामको स्वयं प्रभु रामसे भी अधिक महत्त्व देते हैं—

> 'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥'
> (रा०च०मा० १। २६)

इसी प्रकार सभी भगवन्नामोंकी अलग-अलग विशेषताएँ हैं, जिनसे कलिकल्मषग्रसित कुत्सित जीव कल्याणको प्राप्त होते हैं। शास्त्रोंमें 'नाम-जप'का भी विधान है; परंतु नाम-जपसे नामकीर्तन अनेक प्रकारसे श्रेष्ठ है। जप गोपनीय, नादरहित, व्यक्तिगत होता है, जिसमें केवल जपकर्ताका कल्याण समाहित है। नाम-कीर्तन उच्च स्वरसे होता है, गाजे-बाजे, नृत्य, लय-ताल, ध्यान-धारणा, हाव-भाव अङ्गमुद्राओंसहित सामूहिक रूपसे सम्पन्न होनेके कारण वह विशेष आकर्षक और लोककल्याणकारी होता है। नाम-कीर्तनका उच्च-स्व

वातावरणको प्रभावित करता है। उससे समस्त चराचर जीवोंमें चेतनता जाग्रत् होती है, भक्ति-रसका संचार होता है और प्रेम जाग उठता है। शास्त्रका कथन है कि भगवान् अपने नामका अनुगमन करते हैं। जैसे कोई व्यक्ति नाम लेते ही अपने सहज सम्बोधनके कारण उन्मुख हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् भी नाम लेते ही आ उपस्थित होते हैं। इस कारण नाम-कीर्तनद्वारा उनकी सर्वव्याप्त सत्ता अखिल ब्रह्माण्डको प्रभावित करती है। जिस रस-रीतिसे नाम-संकीर्तन होता है, उसका वैसा ही प्रभाव पड़ता है। नाम-संकीर्तनके सहस्रों प्रकार लोकप्रचलित हैं।

गुण-संकीर्तन

जिस प्रकार नामसे नामीका बोध होता है उसी प्रकार उनके रूप, गुण और लीलाएँ भी उनके स्वरूपकी परिचायक हैं। उनके अस्तित्वके पुष्ट प्रमाण हैं। जैसे सत्यव्रती राजा कहनेपर सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्रका, क्रोधी मुनि कहनेपर दुर्वासा ऋषिका, परशुधारी राम कहनेपर भगवान् परशुरामका, मर्यादापुरुषोत्तम कहनेपर श्रीरामका और लीलापुरुषोत्तम नामसे पुकारनेपर भगवान् श्रीकृष्णका बोध होता है, उसी प्रकार उनके विशिष्ट गुण भी उनकी भगवत्ताका बोध कराते हैं। भगवान् श्रीरामके गुणोंकी महिमा अपार है। उनके संकीर्तनसे कलिकालमें धन, धाम और मुक्ति सुलभ होती है। वासनारूपी भयंकर व्यालके विषहरणके लिये वे 'महामन्त्र'-का काम देते हैं और पूर्व दुष्कर्मोंके कारण संचित कुप्रारब्धका नाश करनेवाले हैं। कलियुगके कुपंथ, कुचाल, कपटाचरण, पाखंड आदि व्याधियोंको वे इस प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे प्रचण्ड अग्नि ईंधनको जलाकर भस्म कर देती है। भगवान्‌की सत्ता, उनके नाम और गुणोंमें व्याप्य-व्यापक-सम्बन्ध है। उनके गुणोंके कीर्तन-चिन्तनसे प्रभुचरणोंमें प्रेमोद्भव होकर साधक उन्हींमें आत्मसात् हो जाता है।

रूप-संकीर्तन

भगवान्‌के गुणोंकी भाँति उनका उनके रूपसे भी अभेद है। उनमेंसे किसी एकका बोध होते ही दूसरेकी चेतना स्फुटित होने लगती है। भगवान्‌के कञ्जलोचन, कन्दर्पविजयिनी छवि, धनुष-बाण, नवनीलनीरद वर्ण, पीताम्बर और खलदलभञ्जनी मुद्राका ध्यान करते ही सहजमें श्रीरामका बोध हो जाता है। इसी प्रकार लकुट, मुकुट, वंशी, नूपुर, त्रिभङ्गीमुद्रासे श्रीकृष्णका अनुमान होता है। इससे स्वयं सिद्ध है कि रूपके आधारपर सम्बन्धित भगवन्नामका स्फुरण एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। नाम और रूप—दोनों ही उन प्रभुकी उपाधियाँ हैं। वे अनिर्वचनीय और अनादि हैं। एकसे दूसरेकी पहचान होती है, वैसे नाम-रूपकी कहानी अवर्णनीय है। उसका समझना सरल है, किंतु वर्णन करना असम्भव है।

लीला-संकीर्तन

भगवल्लीला या कथाका संकीर्तन आत्मरमणका एक उत्कृष्ट उपाय है। जिन लोगोंकी भगवल्लीला-कथामें एक बार अनुरक्ति हो जाती है, उन्हें फिर संसार अच्छा नहीं लगता। उनके चिन्तनमें सदैव प्रभुकी भक्तकल्याणकारिणी, लोकरञ्जनी, दुष्टसंहारिणी किसी-न-किसी लीलाका भान अनवरत बना रहता है। अतः प्रभुसे मन हटानेका कभी अवसर नहीं आता। लीलाएँ भगवान्‌के प्रति विशेष स्नेह उत्पन्न कराती हैं। उनसे मनकी शुद्धता और इन्द्रियोंकी स्थिरता होती है। आरतीमें रामकथाके सम्बन्धमें कहा गया है—

कलिमल हरनि विषय रस फीकी। सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की॥
दलन दोष दुख भूरि अमी की। तात मात सब बिधि तुलसी की॥

भगवान्‌के रूपका ध्यान और उनकी लीलाओंका चिन्तन उनके नाम और गुणोंसे भी अधिक रससिक्त होता है, जिससे भक्तिमें अनायास दृढ़ता आती है। इसी कारण श्रीमद्भागवतमें '**सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्**

भगवल्लीला-कथा-रसका निरन्तर पान करनेका आदेश दिया गया है।

सारांश यह कि भगवत्संकीर्तन एक अनूठा राग है, जिसकी तन्मयतासे जीवधारी (मानव) ही नहीं, चर-अचर नहीं, समस्त ब्रह्माण्डोंमें एक अनादि प्रेम—अभूतपूर्व रागात्मिकाशील संवेदनाका संचार होता है। व्रजगोपियाँ इसी प्रेमके लोकमें विचरण करती हुई अपने घर, पति, संतति, नीति, अनीति, कर्तव्याकर्तव्य—सब कुछ भूलकर 'श्रीकृष्ण—श्रीकृष्ण'की रट लगाती थीं। कभी-कभी तो माखन बेचते-बेचते कोई ग्वालिन—'लै लेउ री ! कोउ स्याम सलौना'—इस प्रकार श्रीश्यामसुन्दर-को ही बेचने लग जाती थी ! प्रेमासक्तिका संकीर्तनसे अच्छा कोई अन्य साधन नहीं। इसी अनुराग-बलके धीर पथिक लीलाशुक प्रभुका स्मरण-कीर्तन करते हुए उनके दर्शनोंकी लालसा लिये, देहकी सुध-बुध खोये हुए—

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे ॥

—की रट लगाये कुश-कण्टकाकीर्ण मार्गपर निश्चल, निस्तब्ध बढ़ते जा रहे हैं। अनन्य प्रेमोद्रेकका सम्बल उनके साथ है। उनका लक्ष्य अब दूर नहीं है। संकीर्तनकी कुछ ऐसी ही महिमा है।

संकीर्तनमें निषेध-विधेय

(लेखक—श्रीपरमहंसजी महाराज,)

राम नाम सब कोइ कहे, दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे, कोटि यज्ञ फल होय ॥

भगवन्नाम-संकीर्तन करना अत्युत्तम है, परंतु उसमें कुछ विहित एवं कुछ निषिद्ध कर्मोंका ध्यान रखना उपादेय है। प्रसिद्ध दसनामापराधोंके अतिरिक्त भक्तिरसामृतसिन्धुमें दस अनर्थोंका भी भिन्न रूपसे वर्णन प्राप्त होता है—दुष्कृतोत्थ, सुकृतोत्थ, अपराधोत्थ, भक्त्युत्थ, सिद्ध्युत्थ, देशवर्तनोत्थ, विश्ववर्तनोत्थ, पूर्णोत्थ, प्रायोत्थ, अत्यन्तोत्थ—ये दस अनर्थ हैं। दशापराधोंसहित इनका भी परित्याग कर हरिनाम-संकीर्तन करना चाहिये। इनका विवरण नीचे है—

१-दुष्कृतोत्थ—पापोंके परिणामस्वरूप पापमूलक विषय-आसक्ति बढ़ती रहती है, जिससे मनुष्य भोगोंमें इतना उन्मत्त हो जाता है कि वह नित्य नया-नया पाप करनेमें गौरवका अनुभव करता है। अतएव इस अनर्थका त्याग कर सद्भावपूर्वक हरिनाम-संकीर्तन करना चाहिये।

२-सुकृतोत्थ—इस दोषके रहते धन, जन, सम्मान, आरामकी ममता अथवा आसक्ति रहती है। वह बड़े वेगसे बढ़ती है। मन उसीमें रमा रहता है, इस कारण हरिनाम-संकीर्तनमें तन्मयता नहीं आती। अतएव इस अनर्थका परित्याग करना चाहिये।

३-अपराधोत्थ—आलस्य, निद्रा, प्रमाद, विकार, कुविचार, विमोक, विमोह, स्वस्थ न होना आदि विघ्न तमोगुणकी प्रवृत्तिसे हो जाते हैं। इन अनर्थोंका त्याग कर संकीर्तन करना चाहिये।

४-भक्त्युत्थ—भक्तिमें लग जानेसे भावमें प्रत्यवाय हो जाता है, प्रतिष्ठा-लोकैषणा बढ़ जाती है, जिससे प्रतिष्ठाको स्वीकार करके मन, बुद्धि और चित्तमें अनर्थ होने लगता है, अतः संकीर्तन विफल हो जाता है।

५-सिद्ध्युत्थ—सिद्धियोंमें मन लुभा जाता है। लोकको रिझानेमें मन तत्पर रहता है। इन सिद्धियोंके कारण साधक पदच्युत हो जाता है। इस अनर्थसे बचकर निष्काम हरिकीर्तन करना चाहिये।

६-देशवर्तनोत्थ--अपने कुटुम्ब और सगे-सम्बन्धियोंमें तथा अपने देशमें पूजनीय होनेकी भावना जाग उठती है, यह महान् अनर्थ है। अतः देशव्यापिनी कीर्तिसे दूर रहकर संकीर्तन करना चाहिये।

७-विश्ववर्तनोत्थ--अपने प्रान्तमें प्रतिष्ठा-कीर्ति बढ़ जानेके उपरान्त भारतवर्षमें ही नहीं, अपितु समस्त संसारमें कीर्ति प्राप्त करनेकी भावना—वासना निकल आती है, जिससे पतनकी ओर जाना पड़ता है। यह महान् अनर्थ है, इसे त्याग देना चाहिये।

८-पूर्णोत्थ—तीनों लोकोंमें देव, नर, तिर्यक्पर अपना प्रभाव डालनेकी दुर्वासना जाग उठती है, यह भी अनर्थ है। उसे पूर्णरूपसे त्याग देना चाहिये। यह निषिद्ध है।

९-प्रायोत्थ—अन्तःकरणमें अनादिकालके अभिप्राय संचित हैं। उन्हें समूल नष्ट करना चाहिये, अन्यथा वे अनर्थ उत्पन्न करके पथभ्रष्ट कर देते हैं। उनसे सावधान रहना चाहिये।

१०-अत्यन्तोत्थ—प्रकृतिजन्य गुणोंसे अनेक संस्कारोंके बीज उत्पन्न होते हैं, जो कामनाओंको उत्पन्न करनेवाले हैं। इन्हें शीघ्र निर्मूल कर देना चाहिये। इन अनर्थोंके त्यागसे संकीर्तनका यथार्थ लाभ भगवत्प्राप्ति की जाती है। सच्चा संकीर्तन ही पुरुषार्थ और परमार्थ है।

उपर्युक्त दस दोषोंको हरिसंकीर्तनमें निषिद्ध माना गया है। इनका पूर्णरूपसे परित्याग करके जहाँ हरिनाम-संकीर्तन किया जायगा वहाँ—'**मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद**।'के अनुसार भगवान् स्वयं लक्ष्मी, परिकर, पार्षद, देवी-देवता, सिद्ध, तीर्थ, वेद और भक्तोंसहित पदार्पण करते हैं।

हरिनाम-संकीर्तन करनेवाले भक्तमें निम्नलिखित भाव शास्त्रविहित होनेसे विधेय हैं। इन भावोंको अपनानेसे भक्तके हृदयमें संकीर्तनकी तल्लीनता, तद्रूपता, तन्मयता और एकतानता आती है, जिससे वह अनेक जन्मार्जित पाप-कर्मोंसे मुक्त होकर भगवत्साक्षात्कारका लाभ उठाता है। इन दस भावोंके माध्यमसे मानव अपने जीवनकी साधको पूर्ण कर लेता है। ये दस भाव नीचे दिये जाते हैं—

१-मधुभाव—जैसे शहद स्वभावसे मधुर है, वैसे ही जिसके मनमें धन, मान, जन, लोककी एषणाएँ नहीं हैं, वह मधुभाव कहलाता है।

२-क्षीरभाव—दूधमें स्वाभाविक विशदपना है, वैसे ही भक्तके हृदयमें कपट-छल-छिद्रकी खटाई न हो तो वह दुग्ध-भाव कहलाता है। उसे दूध-जैसा निर्मल होना चाहिये।

३-घृतभाव—जैसे घृत स्वभावसे स्निग्धतापूर्ण है, वैसे ही भक्तके मनमें भगवान्के प्रति स्निग्धता होनी चाहिये। यह विधेय माना गया है।

४-जलभाव—जैसे जल स्वभावसे निर्मल होता है, वैसे ही भक्तका अन्तःकरण विशुद्ध होना चाहिये। सरल, विनम्र, शुद्ध भाववाला ही संकीर्तनद्वारा परमात्माको प्राप्त कर सकता है।

५-मञ्जिष्ठभाव—जैसे मञ्जिष्ठका रंग लग जानेपर वह धोनेसे नहीं छूटता, वैसे ही भक्तके चित्तमें भगवद्-भक्तिका रंग लग जानेके बाद कोटि विघ्न आनेपर भी वह नष्ट नहीं होता। वह रामधुनिमें तल्लीन रहता है, एक पल भी विलग नहीं रहता।

६-चातकभाव--जैसे पपीहा स्वाति-बूँदके अतिरिक्त किसी भी जलाशयका पानी नहीं पीता, वैसे ही भक्त भगवान्के नामकी लयके अतिरिक्त अन्य किसी दूसरी ध्वनिको नहीं अपनाता। यह चातकभाव अथवा अनन्यभाव कहलाता है।

७-कमलभाव--जैसे कमल जलमें रहता हुआ निर्लेप रहता है, वैसे ही भक्त संसारमें रहता हुआ भी अनासक्तभावसे पूर्ण रहता है। इस कमलभावकी अन्याधिकता मानी गयी है।

८-पतंगभाव--जैसे पतिंगा अपने शरीरकी चिन्ता-ममता न करके अग्निमें कूद पड़ता है, वैसे ही भक्त भी भगवान्‌की विरहाग्निमें कूद पड़ता है। उनके मिले बिना वह एक क्षण भी वियोग सहन नहीं कर पाता।

९-ऐक्यभाव--जैसे सूर्य और प्रकाश, चन्द्र और चन्द्रिका, अग्नि और दाहकताका ऐक्य है, वैसे ही भक्त भगवान्‌से चिपका रहता है, उनसे विभक्त नहीं होता, विभेद—भिन्नता नहीं रखता। वह हरिके नाम-रूप-लीला-धामका मनन करनेमें ऐक्यभावसे पूर्ण रहता है।

१०-दास्यभाव--जैसे प्रेमी सेवक अपने प्रेमास्पद स्वामीको सुखी एवं प्रसन्न करनेमें अपना सम्पूर्ण सुख त्यागकर निरन्तर सेवा, आज्ञा, निदेश, प्रेरणा, संकेत और रुचिमें आलस्य-प्रमाद-कामना-असावधानीका त्याग करके सतर्क लगा रहता है, वैसे ही भक्त अपने इष्टदेव भगवान्‌की सेवा-पूजामें निमग्न रहता है। यह दास्यभाव परम पवित्र विधेय है। उपर्युक्त दस भाव गोपियोंके भावके सदृश वर्णन किये गये हैं। गोपियाँ जिस प्रकार भगवद्भावमें तन्मय होकर श्रीकृष्ण-संकीर्तन करती थीं, वैसे ही सद्भावोंको अपनाना चाहिये। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके हरिसंकीर्तनमें उपर्युक्त दस भाव समन्वित थे। ऐसे भावोंसे पूर्ण होनेसे भक्त—

'भक्त्या त्वनन्यया लभ्यः, भक्त्या मामभिजानाति, सद्भावमागताः।'—की भावभूमिपर आ जाता है। वस्तुतः भगवान्‌के तद्भावको प्राप्त होनेपर वह भगवन्नामके गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको जान लेता है। भगवान् अनन्त, असीम और अत्यन्त ही विलक्षण हैं। वे समता, शान्ति, दया, प्रेम, क्षमा, माधुर्य, वात्सल्य, गम्भीरता, उदारता, सुहृद्‌ता आदि अनन्त विलक्षण गुणोंसे परिपूर्ण हैं। भगवान् अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त तेज, अनन्त बल, अनन्त शक्ति, अनन्त सामर्थ्य, अनन्त ज्ञान, अनन्त यश, अनन्त वैराग्य और अनन्त लक्ष्मीसे परिपूर्ण हैं, ऐसा भगवान्‌का प्रभाव है।

भगवान् सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं। वे सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, निर्विशेष, सविशेष, व्यक्त-अव्यक्त, जड-चेतन, स्थावर-जङ्गम, सत्-असत् और जीव-शिव हैं। यह भगवान्‌का गुह्य तत्त्व है। भगवान्‌के नाम-संकीर्तन, दर्शन, सम्भाषण, स्पर्श, चिन्तन, अर्चन, वन्दन और आरती-स्तवनसे अतिपापी भी परम पवित्र हो जाते हैं। जो भगवान्‌के ऐसे गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको जानकर हरिनाम-संकीर्तन करता है, वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। उपर्युक्त निषिद्ध तथा विधेयका ध्यान रखकर संकीर्तन करना ही इष्ट है।

कृष्णनामामृत

रसने! रटु सुंदर हरिनाम।
मंगल करन, हरन सब असगुन, करन कलपतरु काम॥
तू तौ मधुर सलोनो चाहत, प्राकृत स्वाद मुदाम।
'हरीचंद' नहिं पान करत क्यों, कृष्ण-अमृत अभिराम॥

संकीर्तन-धारा

(लेखक—प्रभुपाद श्रीविनोदकिशोरजी गोस्वामी, एम्०ए०)

श्रीरूपगोस्वामी कहते हैं—

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला
श्रुतिनीराजितपादपङ्कजान्त ।
अपि मुक्तकुलैरुपास्यमान !
परितस्त्वं हरिनाम ! संश्रयामि ॥

'उपनिषदें जिनके पादपद्मकी आरती उतारती हैं, जिनकी मुक्तात्मा भी उपासना करते हैं, हे हरिनाम ! ऐसा आपका मैं आश्रय लेता हूँ ।'

संकीर्तनमाहात्म्यकी धारा वेद, उपनिषद्, पुराण, भागवत, विविध शास्त्रों और सात्वत ग्रन्थोंमें महानुभव-पर आधृत होकर विकसित हुई । श्रील सनातनगोस्वामि-पादने 'श्रीबृहद्भागवतामृत' नामक ग्रन्थमें कहा है—

कृष्णस्य नानाविधकीर्तनेषु
तन्नामसंकीर्तनमेव मुख्यम् ।
तत्प्रेमसम्पज्जनने स्वयं द्राक्
शक्तस्ततः श्रेष्ठतमं मतं तत् ॥

'वेद-पुराणादिका पाठ, कृष्णकथाकीर्तन, स्तुति आदि जो श्रीकृष्ण-कीर्तनके विविध भेद हैं, उनमें श्रीनाम-संकीर्तन ही श्रेष्ठ है । सत्वर श्रीकृष्णकी प्रेमसम्पद्के आविर्भावके प्रसंगमें अन्यनिरपेक्ष होकर भी नाम-संकीर्तन सबसे अधिक शक्तिशाली है ।' वे पुनः कहते हैं—

'सर्वोत्कर्षचरमकाष्ठाप्राप्तः फलविशेषः संकीर्तनादेव सिद्ध्यति'

अर्थात्—केवल श्रीकृष्णनामकीर्तनसे ही सर्वोत्कृष्ट चरमकाष्ठाप्राप्त फलविशेषकी सिद्धि होती है । नामसंकीर्तन केवल साधन ही नहीं, अपितु स्वयं साध्यस्वरूप भी है । श्रीचैतन्यकी कृपा और अनुग्रहसे सनातनगोस्वामिपाद-की अद्भुत विचारधारासे एक अभिनव अपूर्व सिद्धान्तका विकास हुआ । वे नामकीर्तनकी लीलामाधुरीके स्मरणके आनन्दमें इतना डूबे कि उन्होंने अपूर्व भावना-ध्यानके उद्यानमें मानवजीवनके परम आस्वाद्य अमृतफलको उपहारके रूपमें दे दिया । कीर्तनसे चञ्चल मनको वशमें कर एकके बाद एक श्रवण-कीर्तन-स्मरण नामक भक्तिस्वरूपोंका उदय होता है ।

भारतीय साधनाकी परम्परामें श्रवण, कीर्तन और स्मरण मुख्य हैं । श्रवणकी धारामें पुराणोंमें महाराज परीक्षित्की प्रसिद्धि है । कथा-कीर्तनमें व्यास-पुत्र श्रीशुकमुनिकी प्रसिद्धि है और भक्त राजकुमार प्रह्लाद स्मरणाङ्ग भक्तियोगके आदर्श पुरुष हैं । पद्मपुराणके श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें एक मनोरम कीर्तन-महोत्सव-प्राङ्गणका दिव्य चित्र मिलता है—

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत् ।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥

चञ्चलगति होनेसे भक्तराज प्रह्लाद करताल बजा रहे हैं, उद्धव महाराज काँसर लिये हैं, सुरर्षि नारद वीणा लिये हैं, स्वरोंमें कुशल अर्जुन राग अलाप रहे हैं, देवराज इन्द्र मृदङ्ग बजा रहे हैं, सनकादि चारों कुमार जय-जयकी ध्वनि कर रहे हैं और व्यासके पुत्र श्रीशुकदेव परमहंस सरस वचनामृतके सुनानेमें दक्ष होनेसे भाव बतला रहे हैं । इस कीर्तनमण्डलीमें ज्ञान-वैराग्यके साथ भक्तिदेवी भी नृत्य कर रही हैं ।

अचिन्त्यभेदाभेदके प्रवक्ता परमपूज्यचरण श्रीजीव-गोस्वामिपाद कहते हैं—**'पुंसां जीवमात्राणां परो धर्मः सार्वभौमधर्म एतावान् स्मृतः नैतदधिकः ।'**

अर्थात् नामग्रहणादिरूप अथवा नामग्रहण (कीर्तन) जिसके आदिमें है ऐसा जो भगवान्का

भक्तियोग है, वहींतक जीवमात्रका सार्वभौम धर्म है। इस कथनसे स्पष्ट है कि जीवसमूहका परमधर्म और सार्वभौमधर्म नामकीर्तन ही है। श्रीभगवान्‌का नामग्रहण ही साक्षात् भक्तियोगका अनुशीलन है। 'क्रमसंदर्भ'में श्रीजीवगोस्वामिचरणके दिव्य चिन्तनकी यही मुक्तामणि है।

सिद्ध महात्मा गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज कहते हैं—'श्रीभगवान्‌के अनन्त रूप हैं, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। श्रीहरिका नाम लेते-लेते नामके अक्षरोंमेंसे ही उनका स्वरूप प्रकाशमें आयेगा और आत्मस्वरूपका भी ज्ञान होगा, साथ ही उनकी प्रिय सेवा भी अनुष्ठित होगी।' नामकी सर्वतोमुख सामर्थ्यके सम्बन्धमें बाबाजी महाराजकी सुचिन्तित और स्वयंप्राप्त सत्यानुभूति साधुजनोंको प्रसन्नतासे भर देती है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कविराज कृष्णदास कहते हैं—

कलिकाले नामरूपे कृष्ण अवतार।
नाम हइते हय सर्व जगत् निस्तार॥

पुराणोंमें सम्राट्‌स्वरूप श्रीमद्भागवतका कथन है—

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते॥
(१२। १२। ४९)

जिससे उत्तमश्लोक श्रीहरिका यश अनुक्षण कीर्तित होता है, वही नव-नवरूपमें रुचिप्रद, रम्य और चित्त-महोत्सवका जनक एवं शोक-समुद्रका विनाशक होता है। श्रीमद्भागवतमें अनेक स्थानोंपर इस नाममहिमाकी कथा अभिव्यक्त है।

नामकीर्तनसे ही प्रह्लाद, द्रौपदी, गजेन्द्र, राजा अम्बरीष, पृथु, गणिका पिङ्गला सभीका उद्धार हुआ। संत एकनाथ अपने सुप्रसिद्ध एकनाथी गीतामें कहते हैं—'अन्तःशुद्धिका मुख्य कारण श्रीहरिकीर्तनमात्र है, दूसरा कोई साधन नहीं है। अपने बच्चेके प्रति गोमाताकी जिस प्रकार प्रीति और आसक्ति होती है, ठीक उसी प्रकार कीर्तनके प्रति श्रीहरिकी आसक्ति है। मधुमक्खी जिस प्रकार मधुके छत्तेको छोड़कर क्षणभर भी नहीं रह सकती, उसी प्रकार कीर्तनकारीके लिये भगवान् भी सदैव उत्कण्ठित रहते हैं। श्रीरामनाममात्र जिसकी जिह्वासे सदा उच्चरित होता है, वह महापापरूपी पर्वतको ध्वस्तकर परमानन्दमें निमग्न रहता है। प्रीतिके साथ हरि-कीर्तन करनेसे हृदयमें श्रीजनार्दन आविर्भूत होते हैं। कीर्तनकी इस महिमाकी घोषणा गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने भी मुक्तकण्ठसे की है—

तुलसी जगमें आइके कर ले दोनों काम।
देनेको टुकड़ा भला, लेनेको हरिनाम॥

तुलसीदास कहते हैं—तुम इस जगत्‌में आकर यह दो काम अवश्य करना। जैसे दानमें थोड़ा भी भलाके लिये है वैसे ही अत्यल्पके ग्रहणमें श्रीहरिका नाम-संकीर्तन ही मङ्गलस्वरूप है।' संत कबीर, ज्ञानेश्वर, मीराबाई, मुक्ताबाई, सोपानदेव, तुकाराम, नरसीमेहता—सभी नाम-कीर्तनकी इस दिव्य महिमासे अभिभूत हुए हैं।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी पञ्चशताब्दीके अवसरपर आयोजित समारोहमें धर्मसंस्कृति-पत्रिका 'कल्याण'के 'संकीर्तनाङ्क'का प्रकाशन साधु और सुधीजनोंके समाजकी सश्रद्धदृष्टिको अवश्य ही आकर्षित करेगा, इसमें संदेह नहीं। श्रीश्रीराधामाधवके चरणोंमें मेरी प्रार्थना है कि मेरे पिता अनन्त श्रीप्रभुपाद प्राणकिशोरगोस्वामी महाशयके पूज्य बन्धुवर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी मङ्गलभावना 'कल्याण'रूपी कल्पतरुकी सेवक-गोष्ठी उत्तरोत्तर सद्धर्मसाहित्यानुशीलनसे समग्र विश्वमें भारतकी चिन्त्य-अध्यात्म राधाको और प्रतिष्ठित करे।

संकीर्तनसे रोग-निवारण एवं जीवन्मुक्ति

(लेखक—आचार्य श्रीव्रजमोहनजी दधीचि)

संकीर्तनमें शाश्वत स्वर मुखरित होते हैं। यह जीवनके लक्ष्य भागवत तत्त्वके साक्षात्कारका सहज साधन है। यह शिवतत्त्वकी ओर चिन्तन-प्रयाणका माध्यम और सच्चिदानन्दके असीम सौन्दर्यकी अनुभूति कर आनन्दातिरेकसे सहज समाधितक पहुँचनेका सरलतम साधन है। संकीर्तन तन्मयता, एकाग्रता, आत्मपरिष्कार एवं इष्ट-साक्षात्कारका भी सहज साधन है। उपासनाका अर्थ है समीप—निकटतम होकर बैठना। साधनाका तात्पर्य है अपने स्वभावको इष्टदेवके गुण, कर्म, स्वभावके अनुरूप बनानेके लिये निरन्तर अभ्यास, भजन, जप, कीर्तन, कथाश्रवण कर आत्मनिवेदन करना। संकीर्तन आर्तभक्तका एकमात्र आधार है, भवसागरमें डूबते, पीड़ित, शोषित, दलित जीवके लिये सहारा है।

नाम-स्मरण नादब्रह्मकी कृपा-किरण है। निरन्तर, अखण्ड कीर्तन देहधारीके रोम-रोम, अणु-परमाणुमें नवीन ओजस्, वर्चस्का संचार कर समस्त कोशिकाओंको बदल देता है। अक्षर अनन्त हैं। स्वर शिव हैं। शब्द ब्रह्म है। बार-बार उसी शब्दकी पुनरावृत्ति वायुमण्डलकी ध्वनितरंगोंमें विद्युतीय कम्पन पैदा कर विविध प्रकाशपूर्ण रंगोंकी सृष्टि करती है। मुखसे निकली कोई भी ध्वनि, शब्द या विचार कभी नष्ट नहीं होता। इसीलिये कहा गया है—

शब्द सम्हारे बोलिबे शब्दके हाथ न पाँव।
एक शब्द करे ओषधी एक शब्द करे घाव॥

मानव धर्म-शास्त्रका निर्देश है—

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्॥'

नाम-संकीर्तन हमें प्रिय सत्यका ही नहीं, अपितु शाश्वत सत्यका भी साक्षात्कार कराता है। हम जो कुछ भी बोलते हैं, भजन गाते हैं या कीर्तन करते हैं, वे सब स्वरलहरी बनकर अपनी तरंगोंके साथ आकाशमें फैलकर अनन्तकालतक विद्यमान रहते हैं। जो तरंगें विशेष बलवती होती हैं, वे विशेष रूपसे प्रदीप्त रहती हैं। कीर्तनमें गाये जानेवाले शब्द और विचार अनन्तकालसे अनेकों आत्माओंको प्रेरणा एवं प्रकाश देकर जीवन्मुक्तिकी ओर बढ़ाते रहे हैं। अतएव उन्हें भगवान्‌का सूक्ष्म रूप ही कहा जा सकता है। शब्द और विचारोंको सूक्ष्मसे स्थूल करना तथा जीवनमें आवश्यक परिवर्तन कर सकना असम्भव नहीं है; क्योंकि बीजमन्त्रके रूपमें ये शब्द साक्षात् परमात्माका साक्षात्कार कर लघुसे विराट् और जीवसे ब्रह्म बननेकी शक्ति प्रदान करते हैं।

'उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीक भए ब्रह्म समाना॥'

नामस्मरण, संकीर्तन, भजन इस यन्त्रयुगमें भी मानवके अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त करने तथा जीवन्मुक्त होनेमें पूरी सहायता प्रदान करता है।

'मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥'

(मानस)

नित्यप्रति क्रमकी प्रतिकूल परिस्थितियों एवं प्रारब्धसे प्राप्त कष्टोंके निवारण-हेतु प्रभुका नाम-स्मरण, जप-अनुष्ठान, अखण्ड पाठ, कीर्तन बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है तथा आगे भी होता रहेगा। यह वैज्ञानिक सत्य है। मन, कर्म, वचनसे पवित्र होकर प्रभुकी शक्तियाँ—दैवी सम्पदाएँ (अभय, सत्त्व-संशुद्धि आदि) स्वाभाविक रूपसे संकीर्तनकी सहज फलश्रुति बन जाती हैं।

कलियुगमें मनुष्य अनास्था-संकटसे ग्रस्त है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, छल, कपट, मिथ्याभाषण, मिलावट, धोखाधड़ी आजके मानवके स्वभावज कर्म हो गये हैं। जान-बूझकर झूठी जानकारी देना, नकली माल देना, झूठा हिसाब-किताब बनाना, धोखा देकर काम बनाना, हिंसा

करना आजकी कूटनीतिका अङ्ग बन गया है। ऐसे विश्वासघाती युगमें केवल प्रभुका नाम—हरिकीर्तन ही इन समस्याओंसे मुक्ति दिला सकता है।

संकीर्तन न केवल सहकारिता, सहयोग, स्नेह, सद्भावनाओंका विकास कर शान्ति प्रदान करता है, अपितु मानवताकी रक्षाके लिये अवतारी महापुरुषोंकी तरह लोकमङ्गलका जीवन जीनेकी भी प्रेरणा देता है। मानवीय-चेतनाके सात्त्विक स्रोतोंको प्रखर एवं परिष्कृत कर संकीर्तन मानवमें देवत्वका संचार करता है तथा उसे अधिक संयमी, सदाचारी एवं उदात्त बनाता है। संकीर्तनकी तन्मयता, एकाग्रता, नियमितता, श्रद्धा, निष्ठा एवं दृढ़ विश्वास मनुष्यकी कायामें रहनेवाले पशु एवं पिशाचकी तथाकथित प्रगतिशीलताकी आवाजमें छिपी बर्बरताको अनावृत कर दुर्व्यसन, छल, दुष्टता एवं धृष्टतासे मुक्ति पानेके लिये वि[illegible] र देता है। ऐसी विषम स्थितिमें हम किसकी शरण जायँ? अशरणशरण एवं अहैतुक कृपा-कर्ता भगवान्‌के सिवाय हमारा कौन रक्षक है? अतः—

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥

जिनके स्मरणमात्रसे संसारके आवागमनके बन्धनसे मुक्ति मिलती है, उन भगवान् विष्णुकी शरण लें, नमन, वन्दन कर निरन्तर स्मरण-संकीर्तन क्यों न करें? वर्तमान दुष्प्रवृत्तिसे परित्राण पानेका उपाय केवल केशव-कीर्तन 'हरिः शरणम्', नाम-स्मरण, अखण्ड कीर्तन, जप, अनुष्ठान, अखण्डरामायण-पाठ, संगीत-सत्संग, स्वाध्याय, कथा-प्रवचन और संकीर्तन ही हैं, जो न केवल पर्यावरणको शुद्ध करते हैं, अपितु अन्तःकरणको संवेदनशील बनाकर आध्यात्मिक आस्थाएँ दृढ़कर—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

—की सार्वजनीन विश्व-कल्याणकी भावनाओंको विकसित कर आत्मबलको प्रबल करते हैं तथा आत्म-साक्षात्कारके अवसर प्रदान कर जीवन्मुक्त कर देते हैं। संकीर्तनसे न केवल क्लेशों और संकटोंके बादल छटते हैं, अपितु असाध्य रोगोंसे भी मुक्ति मिल जाती है। प्रभु-आश्रित जीवन अजर-अमर एवं मृत्युंजय हो जाता है। सारांश यह कि कलियुगमें संकीर्तन जीवन्मुक्तिका सहज साधन है।

संकीर्तनसे सारा विश्व वैकुण्ठ बन जाता है

'नामसंकीर्तनसे पापोंके प्रायश्चित्त बतलानेका व्यवसाय ही नष्ट हो जाता है; क्योंकि नामसंकीर्तन लेशमात्र भी पाप रहने नहीं देता। यम-दमादि इसके सामने फीके पड़ जाते हैं, तीर्थ अपने स्थान छोड़ जाते हैं, यमलोकका रास्ता ही बंद हो जाता है। यम कहते हैं हम किसको दें, दम कहते हैं हम किसका दमन करें, तीर्थ कहते हैं हम क्या भक्षण करें; यहाँ तो दवाके लिये भी पाप-ताप नहीं रह गया! भगवन्नाम-संकीर्तन इस प्रकार संसारके दुःखोंको नष्ट कर देता है कि सारा विश्व आनन्दसे ओतप्रोत हो जाता है। नाम-संकीर्तन करनेवाले भगवद्भक्त पौ फटनेके पहले ही प्रकाश कर देते हैं, अमृतके बिना ही जिला देते हैं, योगके बिना ही नेत्रोंके सामने भगवान्‌को प्रत्यक्ष करा देते हैं और वे राजा-रंकमें भेद नहीं मानते, छोटे-बड़ेका विचार नहीं करते, सारे जगत्‌के लिये ही आनन्दधाम बन जाते हैं। वैकुण्ठ-लोकमें तो बिरला ही कोई जा सकता है, पर इस नाम-संकीर्तनसे इन भगवद्भक्तोंने सारे विश्वको ही वैकुण्ठ बना डाला है।

—संत ज्ञानेश्वर महाराज

संकीर्तनसे रोगमुक्ति

(लेखक—वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद-बृहस्पति)

आयुर्वेदीय साहित्यमें रोगोंका वर्गीकरण दो प्रकारसे किया गया है—दृष्टापचारज एवं अदृष्टापचारज। इस जन्ममें किये गये कर्मोंसे उत्पन्न रोग दृष्टापचारज तथा पूर्वजन्मकृत कर्मोंके कारण उत्पन्न रोग अदृष्टापचारज कहलाते हैं। इस प्रकार सभी सांसारिक सुख शुभकर्मोंके कारण तथा दुःख अशुभकर्मोंके कारण प्राप्त होते हैं। शरीर भी दो प्रकारके होते हैं—स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर। सूक्ष्म या लिङ्ग शरीर पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्मोंको पुनर्जन्म होनेपर स्थूल शरीरमें ला देते हैं तथा शुभाशुभ फलोंको भोगते हैं। पूर्वजन्मकृत कर्मोंको दैव या प्रारब्ध तथा इस जन्मके कर्मोंको पुरुषार्थ या प्रयत्न कहा जाता है। आयुर्वेदानुसार जन्मान्तरमें किये हुए पाप जीवोंको रोगके रूपमें पीड़ित करते हैं, उनका शमन औषध, दान, जप, देवार्चन (संकीर्तन) एवं हवनसे होता है—

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥

इस चिकित्साको 'दैवव्यपाश्रय' चिकित्सा कहा जाता है। इसमें दैवकी शान्ति एवं निराकरण-हेतु मणि, मन्त्र, जप, कीर्तन, हवन, मङ्गलकर्म एवं यम-नियमोंका प्रयोग किया जाता है। संकीर्तन शब्द देवोपासनासे सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओंको निरूपित करता है। इसमें स्तुति, नामोच्चारण, गुणगान, जप, भजन, अर्चन, कथा, सूक्तपाठ, स्वस्तिवाचनादिका समावेश है। उपर्युक्त माध्यमसे किसी भी साधनसे किया गया ईश्वराराधन संकीर्तन कहलाता है। संकीर्तनसे स्वास्थ्यका उन्नयन तथा रोगका भी निराकरण होता है।

स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षाके हेतु रसायनचिकित्साका विधान है। शरीरकी रसादि धातुएँ जिससे उत्तम रूपमें बनती रहें, शरीर स्वस्थ रहे तथा अकाल, जरा एवं व्याधि जिस उपायसे दूर रहे, उसे रसायन कहते हैं। महर्षि चरकने रसायन-प्रकरणमें आचार-रसायनका निरूपण किया है। सदाचारके परिपालनसे व्यक्ति बिना औषधके ही रसायनके सभी गुण प्राप्त कर लेता है। आचार्यने आचार-रसायनमें जप, देवपूजन, अध्यात्म-चिन्तन तथा धर्मशास्त्रके पठनको विशेष स्थान प्रदान किया है। इस प्रकार देवार्चन या संकीर्तनसे दीर्घायु, स्मरणशक्ति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, कान्ति, वचनसिद्धि, नम्रता एवं शरीरमें उत्तम बलकी प्राप्ति होती है।

आयुर्वेद-वाङ्मयमें पद-पदपर देवोपासनाद्वारा रोग-मुक्ति प्रतिपादित की गयी है। चरकसंहिताकी टीकामें आचार्य चक्रपाणिदत्तने अधिकारपूर्वक उद्घोषित किया है कि अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नामका उच्चारण सर्वरोगोंका विनाश करता है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

वैद्यक ग्रन्थोंमें स्पष्ट आदेश है कि औषधको निश्चित प्रभावकारी एवं चमत्कारी बनाने-हेतु उसके संचय और निर्माण-कालमें निम्नाङ्कित नामोंका कीर्तन करें—

अच्युतं चामृतं चैव जपेदौषधकर्मणि।

यजुर्वेदमें सूक्तपाठ और ईश्वरोपासनासे मनोरोगोंके कारणभूत रज एवं तम दोषका निवारण उल्लिखित है। महर्षि आत्रेयके मतानुसार स्वस्तिवाचन और मन्त्रजपसे उन्माद तथा अपस्मार रोगकी निवृत्ति होती है। विषमज्वर (मलेरिया) दूर करने-हेतु शिव-पार्वतीकी पूजाको औषधस्वरूप निगदित किया है। चरकसंहितामें ज्वर-चिकित्साके प्रसंगमें विष्णुसहस्रनामके पाठको सर्वज्वरहर निरूपित किया गया है—

स्तुवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति ।

महर्षि सुश्रुतने ग्रहबाधामें नाम-जप तथा अपस्मारमें शिव-पूजनको रोगापहर्ता सिद्ध किया है। काश्यपसंहितामें शिशुओंको भूतावेशसे बचाने-हेतु विभिन्न जप करनेका आदेश दिया है। आचार्य वाग्भटने अपने ग्रन्थ 'अष्टाङ्ग-हृदय'में स्पष्ट किया है कि भगवान् शिव और गणेशकी आराधनासे कुष्ठरोग दूर होते हैं। वाग्भट भी अपने पूर्ववर्ती आचार्योंके इस मतसे सहमत थे कि कर्मज व्याधियोंका नाश जपसे होता है। वैद्य बंगसेनने जरारोग और अकालमृत्युके निवारणार्थ **'हरं गौरीं प्रपूजयेत्'**— ऐसा आदेश दिया है। नामसंकीर्तन-हेतु कतिपय स्थानोंपर स्पष्ट रूपसे उपदेश दिया गया है—

युक्तोऽतिसारी स्मरतु प्रसह्य गोविन्दगोपालगदाधरेति।

'अतिसारग्रस्त रोगीको गोविन्द, गोपाल और गदाधर नामोंका स्मरण करना चाहिये।'

कुछ रोग जनपदोद्ध्वंस (महामारी) के रूपमें फैलते हैं। फलतः असंख्य प्राणी कालके गालमें समाहित हो जाते हैं। महर्षि आत्रेयने उसका कारण वायु, जल, देश और कालकी विकृति बतलाया है। इन चारोंकी विकृतिको दूर करने-हेतु महर्षिने सत्कथा, देवार्चन तथा जपादिक सुकृत्योंको प्रशस्त कहा है। आयुर्वेदेतर सभी धार्मिक ग्रन्थोंमें भी संकीर्तनसे सर्वरोगोंका विनष्ट होना प्रतिपादित किया गया है। राधासहस्रनामका पठन हिचकी, वमन, मूत्ररोग, ज्वर, अतिसार और शूलका शमन करता है—

हिक्कारोगं तथा छर्दिं मूत्रकृच्छ्रं तथा ज्वरम् ।
अतिसारं तथा शूलं शमयेत् पठनादपि ॥
(रुद्रयामल)

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित गोपीगीतका पाठ हृदयसम्बन्धी रोगोंको दूर करता है— **'हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः।'** विषविकार दूर करनेमें विभिन्न मन्त्रोंका चामत्कारिक प्रभाव लोकसिद्ध है। गरुडध्वजके नामका कीर्तन तथा श्रवण सर्पदंश, वृश्चिकदंश, ज्वर और शिरोरोगका शमन करता है।

केशव तथा पुण्डरीकाक्ष नामोंका संकीर्तन नेत्ररोगोंको विनष्ट करता है—

केशवं पुण्डरीकाक्षमनिशं हि तथा जपेत् ।
नेत्रबाधासु घोरासु······················ ॥

धर्मप्राण भारतवर्षमें आदिकालसे ही संकीर्तनका अत्यधिक महत्त्व रहा है। नैत्यिक संकीर्तन मनोह्रास, अवसाद तथा विभाजित मानसिकताका निराकरण करनेमें औषधस्वरूप है। वर्तमान भौतिक जीवनके ऊहापोहमें संकीर्तनका प्रयोग मनोवैज्ञानिक चिकित्साका काम करता है। संकीर्तन सांसारिक दुःखोंकी निवृत्ति तथा सच्चिदानन्दकी प्राप्तिका अव्यर्थ साधन है। पाश्चात्त्य वैज्ञानिक निश्चित शब्दोंकी बार-बार कर्णेन्द्रियमें प्रविष्टि करके कुछ रोगोंका शमन करनेमें सक्षम सिद्ध हुए हैं। राम एवं कृष्ण शब्दोंका सतत उच्चारण विषाणुग्रस्त रक्तके निर्विषीकरणमें सहायक पाया गया है। भारतमें ही नहीं, विश्वके अनेक देशोंमें चल रही भगवन्नामसंकीर्तनकी लहर विभिन्न मानसिक और शारीरिक रोगोंको शान्त करनेमें सफल हुई है।

संकीर्तनके अलौकिक प्रभावसे दैहिक, दैविक और भौतिक संताप नष्ट होकर सुख, शान्ति तथा समृद्धिकी अभिवृद्धि होती है। बृहद्विष्णुपुराणमें इसी तथ्यको निम्नरूपमें अभिव्यक्त किया गया है—

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥

महाराष्ट्रकी मीरा—संत जनाबाई

(लेखक—डॉ श्रीकृष्णलालजी हंस, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

हिंदीके संत-साहित्यमें जो स्थान मीराबाईको प्राप्त है वही स्थान मराठीके संत-साहित्यमें जनाबाईको प्राप्त है। दोनोंकी भक्ति-रीति प्रायः एक-सी ही है। जनाबाईके विट्ठल अथवा पाण्डुरङ्ग ही मीराबाईके गिरधरगोपाल हैं। जनाबाईका आविर्भाव-काल मीराबाईसे लगभग दो शताब्दी पूर्व है। इनका स्थान महाराष्ट्रकी संत-कवियित्रियोंमें सर्वोच्च तथा भक्ति-भावना और काव्य-वैभव भी अपूर्व है। इनके काव्यमें कल्पनाकी उड़ान और भाषाकी प्रगल्भता नहीं है। भाषाकी सरलता तथा भोले और प्रेमार्द्र हृदयकी भक्ति-विह्वलता ही इनके काव्यकी वे विशेषताएँ हैं, जिन्होंने इन्हें मराठीके संत-साहित्यमें सदाके लिये अमर बना दिया है। इनके द्वारा रचित अभंग आज लगभग छः सौ वर्षके पश्चात् भी मराठी-भाषियोंकी वाणीपर तरङ्गित दिखायी देते हैं।

गोदावरीके पुनीत तटपर गंगाखेड़नामक एक छोटा-सा ग्राम है। इन भक्तिमती देवीका जन्म वहीं एक शूद्र-परिवारमें हुआ था। इनके माता-पिता विट्ठलभगवान्के परम भक्त थे। वे प्रतिवर्ष पण्ढरपुरकी यात्रा करते थे। भक्त माता-पिताकी संतानके हृदयमें भक्तिका बीज उर्वरित होना स्वाभाविक ही था। जनाबाई जब केवल पाँच वर्षकी ही थीं, अपने माता-पिताके साथ पण्ढरपुरकी यात्राको गयीं। ये वहाँ विट्ठल-भगवान्की मूर्तिके दर्शन करते ही मुग्ध हो गयीं। इनके माता-पिताने इन्हें बहुत समझाया, किंतु ये मन्दिरसे हटनेको सहमत न हुईं। यह देखकर इनके पिता दामा तथा माता करुंडने इन्हें नामदेवके पिता दामा सेठको सौंप दिया। ये नामदेवके परिवारकी एक सदस्या बन गयीं। इनसे जब कोई यह पूछता कि तुम किसकी लड़की हो, तब ये उत्तरमें यहीं कहतीं कि मैं नामदेवकी दासी हूँ। अपने अभंगोंमें भी इन्होंने 'दासी जनी' शब्दका ही प्रयोग किया है। इस परिवारमें रहते हुए इनकी भगवद्भक्ति और भी विकसित हो गयी। नामदेवकी सेवा करना और उनके साथ भगवद्भक्तिमें तल्लीन रहना ही इनके जीवनके कार्य थे। कहते हैं, स्वयं नारदजीसे इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। इन्होंने स्वयं नामदेवके सत्संगसे भक्तिका प्रसाद प्राप्त होना स्वीकार किया है।[1]

ऐसा जान पड़ता है कि जनाबाई आजन्म अविवाहित रहीं और हरि-स्मरणमें ही इन्होंने अपना जीवन बिता दिया। ये निष्कामकर्मयोगिनी थीं। इनकी भगवद्भक्ति किसी कामनासे न थी, ये केवल भगवान्के सांनिध्यकी आकाङ्क्षिणी थीं। ये केवल यही चाहती थीं कि इन्हें सर्वत्र और सर्वकाल इनके परम प्रियतम आराध्यके दर्शन होते रहें—

हेंचि देईं हृषीकेशी। तुझें नाम अहर्निशी॥
रूप न्याढालीन डाला। पुढें नाचेन वेलोवेला॥
सर्वाठायीं तुज पाहें। ऐसें देउनि करीं साहे॥
धावां करितां रात्र झाली। दासी जनीसि भेटी दिली॥

ये कहती हैं—'हे हृषीकेश! मुझे यही वरदान दो कि मैं रात्रि-दिवस तेरा नाम लेती रहूँ। मेरे नेत्रोंके सामने तेरा रूप नाचता रहे। मैं सर्वत्र तुझे देखती रहूँ। तू मुझे इस प्रकारका वरदान देकर मेरी सहायता कर। जब मुझे दौड़ते-दौड़ते रात्रि हो गयी, तब भगवान्ने मुझे दर्शन दिये।' अब ये आराध्यमय हो गयीं। इन्हें प्रत्येक वस्तु आराध्यस्वरूप दिखायी देने लगी। ये भगवान्में तन्मय होकर कहती हैं—'मैं देव खाती, देव पीती और देवपर ही सोती हूँ। मैं देव ही

१—जनी म्हणे जोड़ झाली विठोबाची। दासी नामयाचि म्हणोनिया॥

देती, देव ही लेती और देवके साथ ही व्यवहार करती हूँ। यहाँ-वहाँ सर्वत्र देव ही हैं। कोई भी स्थान देवसे शून्य नहीं है। मेरा अन्तर और बाह्य देवसे ही पूर्ण है।'[1]

कितनी महान् भाग्यशालिनी हैं, ये ! इन्हें अपने प्रियतम आराध्यके बिना चैन नहीं, उधर इनके आराध्यको भी इनके बिना चैन नहीं है। वह सदैव इन्हींके आगे-पीछे डोलता रहता है। वह इनसे एक क्षणको भी विलग नहीं होता। ये जहाँ जातीं, वहीं वह इनके साथ चला जाता और इनके प्रत्येक कार्यमें सहायता करता है। ये पानी भरने जातीं, इनका आराध्य इनके साथ वहीं चला जाता और अपने हाथसे इनकी गागर भरने लगता है।[2] ये जंगलमें कंडे बीनने जाती हैं, इनका आराध्य पीताम्बर पहिने इनके साथ कंडे बीनता दिखायी देता है।[3] ये धान कूटना आरम्भ करती हैं, इनका प्रियतम इनके हाथसे मूसल लेकर स्वयं कूटने लगता है। कूटते-कूटते उसके हाथोंमें छाले पड़ जाते हैं, पर वह मूसल नहीं छोड़ता।[4] अत्यधिक कार्यव्यस्तताके कारण जनी अधिक दिनोंतक अपना सिर नहीं धो पातीं, वह स्वयं इनकी वेणी अपने हाथमें लेकर माताकी तरह सँवारने लगता है।[5] धन्य है इनकी भगवद्भक्ति !

जब रात्रिके तीसरे प्रहरमें उठकर चक्कीसे अनाज पीसतीं और सुरीले कण्ठसे गीत गाती जातीं, तब इनके स्वरके साथ किसी दूसरेका भी गीत-स्वर सुनायी देता था। नामदेवकी माता गोणाईको इनके साथ किसी अन्य पुरुषके होनेका संदेह होता है और वे करछुल लेकर इन्हें मारने जाती हैं। वे वहाँ देखती हैं कि इनके साथ कोई पुरुष नहीं, पर दूसरी एक स्त्री पीसती हुई गीत गा रही है और वह अपना नाम 'बिठाबाई' बतलाती है। गोणाईके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता, वे लज्जित होकर लौट आती हैं। नामदेव समझ जाते हैं कि वह बिठाबाई और कोई नहीं, उसका परम प्रियतम आराध्य 'विट्ठल' ही है, जो कभी पुरुष-वेशमें और कभी स्त्री-वेशमें सदैव अपनी अनन्य-भक्ता जनाबाईके साथ बना रहता है।[6]

जनाबाईकी अनन्यभक्तिके कारण इन्हें सदैव अपने आराध्यका मधुर मिलाप प्राप्त था। ये प्रत्येक कार्य ईश्वरार्पण-बुद्धिसे करतीं और अपने उन कार्योंमें अपने आराध्यका ही योग अनुभव करती थीं। इस प्रकार इन्हें तादात्म्य स्थिति प्राप्त थी। इन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि इनके सब काम ईश्वर ही करता है। ये इसी मधुर भावनासे अपने सब कार्य करती थीं। इनकी इस भावनासे इनकी सब क्रियाएँ पुनीत हो गयी थीं और ये अपने हृदयमें नित्य नूतन बल-संचारका अनुभव करती थीं। इससे इनका जीवन अत्यन्त पवित्र और आह्लाददायक बन गया था। इनके अनेक अभंगोसे ऐसा जान पड़ता है कि इनकी अपने आराध्यके प्रति मातृत्वकी भावना भी कम न थी। ये उसे किंचित् भी अपनी दृष्टिसे ओझल देखतीं तो ये उसी प्रकार

१–देव खातें देव पितें। देवावरी मी निजतें॥
देव देतें देवा घेतें। देवासवें व्यवहारितें॥
देव येथें देव तेथें। देवा वीण नाहीं रितें॥
जनी म्हणे बिठाबाई। भरुनि उरली अन्तर्बाहीं॥

२–पाणी आणावया गेली। तिच्या मागें धांव झाली॥
घागर घेऊनी हातांत। पाणी ओती रांजणांत॥

३–शेणी वेंचू गेलें रानीं। पाठीमागें उभा कान्हा॥

× × × ×

पितांबराची घाली कास। शेणी वेंची सावकाश॥

४–हातां आले फोड़। जनी म्हणे मुसल सोड़॥

५–आपुले हातीं वेणी घाली। जनी म्हणे माय झाली॥

६–एकलीच गाणें गात। दुजा साथ उमरत॥
कोण गे तुझे बरोबरी। गाणें गातो तुझे घरी॥
म्हूण कळली नामदेवा। विट्ठल जनींचिया भावा॥

उसके लिये विलखने लगतीं, जिस प्रकार शिशु अपनी माताके लिये विलखने लगता है। शिशुको बिलखते देख जैसे माता अपना सब कार्य छोड़ उसके पास दौड़ी-दौड़ी आती है, इसी प्रकार इनका आराध्य भी इनका क्रन्दन सुन दौड़ पड़ता है। ये कहती हैं—'मैं तेरे बिना कैसे जीवित रहूँ, अपने प्राणोंको जानेसे कैसे रोकूँ। मेरे प्राण निकलना ही चाहते हैं, मेरी माता! शीघ्र ही दौड़कर आ। हे माता! मैं तुझसे प्रार्थना कर रही हूँ, तू आकर मुझे दर्शन दे।[1]' ये एक दूसरे अभंगमें अपने उद्धारकी प्रार्थना करती हुई कहती हैं—हे विट्ठल! क्या तू न आयेगा? मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध हो गया है? तू ही मेरे माता-पिता और स्वामी है, मेरी सुध ले और मेरा उद्धार कर। तूने अनेक बड़े-बड़े पापियोंका उद्धार किया है। मेरी-जैसी पापिनीका उद्धार करना तेरे लिये कौन कठिन है। हे दीनानाथ! हे दीनबन्धु! कृपासिन्धु! मेरा भी उद्धार कर।[2] कितनी विह्वलता और प्रेमार्द्रता है जनाबाईकी वाणीमें।

जनाबाईके कुछ अभंगोंमें दार्शनिक भावनाएँ भी बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त हुई हैं। ये एक अभंगमें कहती हैं—मैंने पण्ढरपुरके चोरको उसके गलेमें रस्सी बाँधकर पकड़ लिया है। मैंने अपने हृदयको बंदीगृह बनाकर उसमें उसे बंद कर दिया है। मैंने शब्दोंको जोड़कर बेड़ी तैयार की और वह बेड़ी विट्ठलके पैरोंमें डाल दी है। इसके पश्चात् जब मैंने उसे 'सोऽहं' शब्दके चाबुकसे मारना आरम्भ किया, तब वह कायल हो गया। मैंने उससे कहा—हे विट्ठल! अब मैं तुझे इस जीवनमें कभी भी अपने हृदयके बंदीगृहसे मुक्त न करूँगी।[3] जनाबाईके इस रूपकमें जो इनके हृदयका सौन्दर्य परिलक्षित है, वह काव्यके महान् सौन्दर्यसे किसी प्रकार भी कम मूल्यवान् नहीं है। यदि भगवान् अपने ऐसे भक्तके लिये धान कूटने, अनाज पीसने, कपड़े धोने, पानी लाने और कंडे बीननेका कार्य करें तो इसमें अश्चर्य ही क्या है।[4]

जब भक्त अपने भगवान्में पूर्ण तन्मय हो जाता है, उसके विरहमें क्रन्दन करने लगता है, उसके मिलनका अनुभव करके नृत्य करने लगता और निशि-वासर उसके ध्यानमें आत्मविस्मृत बना रहता है, तब भगवान् सर्वथा उसके वशमें हो जाते हैं और उसके संकेतोंपर दौड़े-दौड़े फिरते हैं। वह भक्त धन्य है, जिसके संकेतपर, अपने संकेतपर समस्त विश्वका संचालन करनेवाला स्वयं चलनेको विवश होता है। जनाबाई महाराष्ट्रकी एक ऐसी ही भक्तप्रवरा थीं। ये अपढ़ थीं, असंस्कृत थीं, शूद्रकन्या थीं, किंतु इनकी अनन्य भक्तिने इन्हें संतोंके लिये भी वन्दनीय बना दिया।

अन्य भगवद्भक्तोंकी तरह जनाबाईके जीवनसे सम्बन्धित भी अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ सुनी जाती हैं। उनमेंसे एक घटना इस प्रकार है। एक दिन रात्रिके तृतीय प्रहरमें विट्ठलभगवान् जनाबाईके साथ पीसने बैठ गये और इनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाने लगे। गीतोंकी तल्लीनतामें उन्हें समयका ध्यान न रहा।

१–तुजविण काय करूँ। प्राण किती कंठीं धरूँ॥
आतां जीव जाऊँ पाहे। धांव घाली माझे माये॥
माझी भेटेना जननी। संता विनवी दासी जनी॥

२–कांग नयेसी विट्ठला। ऐसा कोण दोष मला॥
मायबाप तूँचि धणी। मला सांभाळी निर्वाणी॥
त्वां वा उद्धरिले थोर। तेथें कोण मी पामर॥
दीननाथा दीनबंधू। जनी म्हणे कृपासिंधू॥

३–धरिला पंढरिचा चोर। गळा बांधोनिया दोर॥
हृदय बंदीशाला केले। आंत विट्ठला कोंडिलें॥
शब्दें केली जुड़ा-जुड़ी। विट्ठलपायीं घातली बेड़ी॥
सोहं शब्दांचा मार केला। विट्ठल काकुळती आला॥
जनी म्हणे बा विट्ठला। जीवें न सोडी मी तुला॥

४–दळण कांडण धुणें धोंडुनी पाटी डोईवरी।
गवरया वेचुन आणी बरी॥

प्रातःकालकी आरतीका समय हो गया, किंतु मन्दिरमें भगवान् नहीं हैं। यह स्मरण आते ही जनाबाईने तुरंत ही विट्ठलभगवान्को मन्दिरमें भेज दिया। शीघ्रतामें जनाबाईका कम्बल उनके साथ चला गया। मन्दिरमें भगवान्को कम्बल ओढ़े देखकर ब्राह्मणोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। पता लगानेसे विदित हुआ कि वह कम्बल जनाबाईका है, फिर क्या था, उनके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने सोचा, 'जनाबाईने भगवान्का स्वर्णपदक चुरा लिया है और वह चोरी छिपानेके लिये उसने अपना कम्बल उन्हें ओढ़ा दिया है।' उन्होंने जनाबाईके लिये प्राणदण्ड घोषित कर दिया। ये शूलीपर चढ़ानेके लिये वध-स्थलमें लायी गयीं। इन्होंने मृत्युके पूर्व जैसे ही अपने आराध्यका स्मरण करते हुए शूलीकी ओर देखा, शूली जलके रूपमें परिवर्तित हो गयी। उपस्थित जनसमूह यह चमत्कार देखकर स्तब्ध हो गया और जनाबाईकी भगवद्भक्तिकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करने लगा।

जनाबाईका साहित्य

इन अपठित संत गायिकाद्वारा रचित लगभग तीन सौ अभग अवश्य उपलब्ध हैं। अध्यात्म, भगवद्भक्ति, हरिनाम-महिमा, नामदेव-प्रशंसा, पौराणिक आख्यानादि इनके अभंगोंके प्रमुख विषय हैं। स्त्री-सुलभ विनीत और कोमल भावना, आर्तहृदयाभिव्यञ्जना, भक्तहृदयकी विह्वलता एवं अपने आराध्यके प्रति व्यक्त की गयी अनन्यता इनके काव्यकी विशेषताएँ हैं। कुछ अभंग प्रसंगानुसार पहले दिये जा चुके हैं। इनके एक वात्सल्य-रस-पूर्ण अभंगका भावार्थ इस प्रकार है—'वैकुण्ठमें निवास करनेवाला हरि यशोदाके घरके आँगनमें रेंग रहा है। उसके सिरपर जवालकी वेणी है। पैरोंमें पैंजनी और कड़े तथा हाथमें मक्खनका लौंदा है। माता यशोदा! तू धन्य है। यह दासी जनी तेरे चरणोंकी वन्दना करती है[1]।'

भगवान् जनाबाईके घर आते हैं। ये उनका सम्मान करनेमें अपनेको असमर्थ पाती हैं। ये कहती हैं—'भगवन्! मैं आपका स्वागत कैसे करूँ? तू तो वैकुण्ठके रत्न-सिंहासनपर आसीन रहनेवाला है। मेरे घर तो एक कुरूप खुरदरा आसन है, जिसपर मैंने एक फटा कपड़ा बिछा रखा है। तू विश्वम्भर है, मैं तेरा सम्मान कैसे करूँ? एक टूटी हुई खाट है, जिसपर एक गुदड़ी बिछी हुई है। तेरे समान सुकुमारको उसपर निद्रा कैसे आयेगी? तू मेरे घरके फूटे तूँबेमें जल कैसे पीयेगा? रुक्मिणी सुस्वादु व्यञ्जनोंसे थाली सजाकर तेरी प्रतीक्षा कर रही है। हे विट्ठल! क्या तू मेरे घरके रूखे-सूखे बासी स्वादहीन टुकड़े खा सकेगा[2]?' इनकी विवशता कितनी हृदयस्पर्शिनी है! जनाबाईके सभी अभंगोंमें इनके हृदयकी सरलता और इनके हृदयमें प्रवाहित होनेवाले प्रेमका विमल स्रोत देखा जा सकता है। साहित्य-सौन्दर्यकी दृष्टिसे इनका साहित्य भले ही उच्चकोटिका न हो, किंतु भक्ति-साहित्यकी दृष्टिसे वह अत्युच्च कोटिका है। उसकी इसी श्रेष्ठताने इन्हें

१–वैकुंठीया हरि। ताना यशोदेचा घरी॥
रांगत से हा अंग णी। माथाँ जावळाची वेणी॥
पायीं पैंजण आणि वाले। हातीं नवनीताचे गोळे॥
धन्य यशोदा माय। दासी जनी वंदी पाय॥

२–खडतरले आसन त्यावर झुडतरले वसन।
तुज कैंचे रत्नसिंहासन रे विठोबा॥
काय करूँ उपचार भक्तिभावाचा लाचार।
तो तूँ विश्वी विश्वम्भर सर्वसाक्षी रे विठोबा॥
मोडकीसी बाज त्यावर वाकळाची सेज।
तुज सुकुमारासी नीज कैसी येईल रे विठोबा॥
फुटकासा तुंबा कैसा उदक पिशी वा।
ताट वाढुनि रुक्मिणि रंभावाट पाहे रे विठोबा॥
वाळले विळले कुटकें शिळे आणि तुटके।
प्रभु दासी जनीचे विटके खासी रे विठोबा॥

मराठी-भाषियोंका कण्ठहार बना दिया है। इनके काव्यका गान करते हुए कोई भी आत्मविभोर हो सकता है। जनाबाईके कृष्णजन्म, हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद-चरित्र, द्रौपदी-चीरहरण आदिसे सम्बन्धित अभंग भी प्राप्त हैं।

दिव्यलोक-प्रयाण

महाराष्ट्रकी इन भक्तप्रवरा भगवद्‌गुणगायिकाका देह-त्याग आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी, सं० १३५० वि० को हुआ था। इन्होंने समाविस्थ होनेके पूर्व एक अभंगमें कहा है कि 'मेरे मनमें जो-जो था, वह हरिकृपासे मुझे प्राप्त हो गया है[1]।' जनाबाईके समान अनन्य भगवद्भक्ति-परायणकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण होना आश्चर्यजनक नहीं है। जिनकी अटल और निष्काम भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने साकारस्वरूपमें अहर्निश उनके साथ रहनेमें आनन्दानुभव किया, उनके लिये उसे क्या अदेय हो सकता था।

श्रीहरेरामजी महाराज

(लेखक—श्रीपुरुषोत्तमजी दीक्षित)

चरित्रनायक महाराजका जन्म संवत् १९५७ की श्रावण कृष्णा सप्तमीको सूर्यास्तके समय म० प्र० में होशंगाबाद जनपदके कहारिया गाँवमें पं० श्रीहीरालाल परसाईके पुत्ररूपमें हुआ। ये मूल नक्षत्रमें पैदा हुए थे। ये पहले छः दिनतक निराहार रहे। सातवें दिन इन्होंने स्तन-पान किया। माता-पिताने इस बालकका नामकरण 'जगन्नाथप्रसाद' किया। अध्ययनार्थ ये खंडवा गये। माखनलाल चतुर्वेदी इनके सहपाठी थे। माताके विशेष स्नेहके कारण इन्हें पढ़ाई अधूरी छोड़-कर कहारिया लौटना पड़ा। इनके पिता परसाईजी शिवभक्त थे और पौरोहित्यद्वारा परिवारका पालन करते थे। इन्होंने सिवनीमें रामलीलाका आयोजन प्रारम्भ किया।

एक बार नगरमें किसी ऐसे व्यक्तिकी मृत्यु हो गयी, जिसका कोई सम्बन्धी या अन्तिम संस्कार करने-वाला न था। उसकी अन्त्येष्टि इन्होंने ही की। अन्त्येष्टि-संस्कार करके लौटनेपर इनके मुख-मण्डलपर एक अनोखी शान्ति झलक रही थी। माता-पिताने इनका विवाह इनकी कुछ विरक्ति देख सोहागपुर-निवासी श्रीबालारामजी दीवानकी कन्यासे कर दिया। पर ये शीघ्र ही गृहस्थी छोड़कर विरक्त हो गये।

अब इनकी जीवनधारा पूर्ण रूपसे भक्तिकी ओर प्रवाहित हो उठी। प्रखर वैराग्य हो जानेसे नाम संकीर्तनके अतिरिक्त इनका कोई दूसरा कार्य ही न रह गया। सारा समय भगवदाराधनमें बीतने लगा। जिस बाल-रूपकी उपासनामें इनका समय बीतता था, उसका प्रत्यक्ष दर्शन इन्हें बहुत पहले हो चुका था। एक दिन पूजनसे निवृत्त हो ये ज्यों-ही उठे, त्यों-ही घरमें ओखलीके समीप इन्हें साक्षात् भगवान् श्रीरामके बालरूपकी एक प्रतिमा दीखी। फिर क्या था, वे पागलकी तरह उस बाल-मूर्तिको अपने अङ्कमें लेनेके लिये दौड़ पड़े। परंतु उस लीला-मयको कौन पकड़ पाया है। श्रीमहाराज ओखलीके चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं और मातासे कह रहे हैं—'पकड़ो, पकड़ो, मैं भगवान्‌को गोदमें लूँगा।' बेचारी माँ घबरा गयीं, उन्हें तो कहीं कुछ दिखायी नहीं दिया। वे किसे पकड़तीं और महाराज दौड़ रहे थे। भक्त और भगवान्‌की इस भाग-दौड़में हारकर

[1] —माझे मनीं जें जें होतें। तें तें दीधलें अनंतें॥

श्रीमहाराज रोने लगे। इन्होंने हताश होकर अपना सिर घरके एक खंभेपर दे मारा, जिससे घरके खपरे-तक गिर गये। माँने देखा कि श्रीमहाराज मूर्छित हो गये हैं। वे इन्हें होशमें लानेका प्रयत्न करने लगीं। मूर्च्छा टूटनेपर इनका रुदन पुनः प्रारम्भ हो गया! न जाने माँने क्या समझा होगा।

श्रीमहाराज टाटके वस्त्र धारण करते, टाट ही ओढ़ते और बिछाते थे। इनका अखण्ड कीर्तन निरन्तर चलता रहता था। अभिमन्त्रित बिल्वपत्र, वह भी चौबीस घंटेमें एक बार, इनका भोजन था। नाम-संकीर्तनके अतिरिक्त ये मौन ही रहते थे। आवश्यकता-नुसार लिखकर ये अपने विचार प्रकट करते थे। जहाँ अखण्ड कीर्तनका समायोजन होता वहीं ये जाते थे। यथासम्भव ये किसीसे चरणस्पर्श नहीं कराते थे तथा रुपये आदिका स्पर्श नहीं करते थे। इनकी दिनचर्या प्रभात-फेरीसे प्रारम्भ होती थी। टाटके वस्त्र पहने हुए, नंगे पैर होशंगाबादकी गलियों और मार्गोंपर हाथोंमें करताल धारण किये हुए श्रीमहाराज उच्च स्वरमें 'श्रीहरेराम' महामन्त्रका कीर्तन करते हुए दोपहरको घर लौटते थे। सन् १९३४में श्रीमहाराज होशंगाबाद पधारे थे। प्रारम्भमें नगरवासियोंके मनमें मात्र एक कौतूहलमिश्रित भाव ही जगा। कुछने इनके कार्यकी परीक्षा-रूपसे आलोचना भी की, पर अधिकांश लोग श्रीमहाराजके त्याग और संयमसे तपे हुए तेजोमय रूप और साधनाकी ओर आकृष्ट होने लगे। संदिग्ध भाव रखनेवाले आलोचकोंमें भी श्रीमहाराजके प्रति धीरे-धीरे आस्था जागने लगी। कीर्तन करते हुए ये भावसमाधिमें लीन हो जाते। कई बार तो डॉक्टरी जाँच भी करायी गयी। श्रीमहाराज दो-तीन घंटे पश्चात् मूर्छाका त्याग कर पुनः कीर्तनमें लीन हो जाते। इन प्रभु-लीन आत्मामें क्रमशः लोगोंकी श्रद्धा बढ़ती ही गयी। भीषण ग्रीष्मकालमें नंगे पैर, टाटके वस्त्रोंको धारण किये, श्रीमहाराज कीर्तन करते हुए घूमते थे और लोग इनकी परीक्षा करनेके लिये इनके साथ कीर्तन करते हुए इन्हें घेरे खड़े रहते थे कि देखें इस कड़ी धूपमें कब-तक ये जलती रेतमें खड़े रह सकते हैं। श्रीमहाराजका यह नियम था कि कीर्तन-यात्रामें जहाँ-कहीं कोई भक्त इनके सामने खड़ा होकर कीर्तन करने लगता था, ये उस स्थानसे तभी आगे बढ़ते, जब भक्त इनसे विदा लेकर चला जाय। श्रीमहाराजकी अनेक बार भीषण आतपमें पदत्राणधारी तथाकथित भक्तोंने परीक्षा ली, परंतु प्रतिबार इन्हें अपने कीर्तनमें लीन ही पाया। श्रीमहाराजके आगे प्रकृति पराजित हो चुकी थी। वर्षा, शीत, आतपसे अप्रभावित श्रीमहाराजकी साधना निरन्तर बलवती होती गयी।

अब श्रीमहाराज बिल्वपत्रका त्याग कर गँवारपाठाका सेवन करने लगे थे। ये भगवान्‌के नैवेद्यरूपमें गँवारपाठा-का ऊपरी छिलका निकालकर भीतरका गूदा ही चौबीस घंटेमें एक बार ग्रहण करते थे। होशंगाबादस्थित 'श्रीजी'के मन्दिरके एक कमरेमें श्रीमहाराज निवास करते थे, जहाँ अखण्ड नाम-संकीर्तन चलता रहता था। भक्तोंकी अपार भीड़ लगती थी। बहुतेरे भक्त अपनी सांसारिक कामनाएँ लेकर आते, कोई बीमारीसे मुक्ति चाहता, कोई मुकदमा जीतनेकी कामना लेकर आता, कोई संतान-प्राप्तिकी इच्छा लेकर आता, कोई धन-प्राप्तिकी लालसा लेकर आता। सहज-सरल महाराजके पास 'नाम'के सिवाय क्या था? ये सभीको एक ही आशीर्वाद देते—'नामको पकड़ो, वही उद्धार करेगा।' भगवन्नाम-संकीर्तनका ही उपदेश इन्होंने जीवन भर दिया। परिणामस्वरूप घर-घर नाम-संकीर्तनका प्रचार होने लगा, भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण होने लगीं। किसीको धन-लाभ, किसीको पुत्र-लाभ, किसीको जीवन-लाभ, इस

प्रकार श्रीमहाराजकी कीर्ति दिनोंदिन बढ़ने लगी और साथ ही बढ़ने लगा इनका साधना-क्रम।

श्रीमहाराजजीकी नर्मदाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। ये उसके जलको छोड़कर केवल तीर्थाटन आदिके अवसरपर गङ्गा-यमुना प्रभृति पवित्र नदियोंका ही जलमात्र ग्रहण करते थे। 'रामचरितमानस' महाराजका प्राण-प्रिय ग्रन्थ था। ये उसके अनेक पारायण कर चुके थे। साधनाके क्रममें ऐसे ही अवसर आये, जब ये दिनमें एकाधिक बार 'मानसपारायण' कर लिया करते थे। 'नाम-जप' भी चलता रहता था। 'सो सूरुख जो करन चह लेखा' वाली उक्ति चरितार्थ होती थी। एक बार भक्तोंके मनमें इच्छा जाग्रत् हुई कि श्रीमहाराजके मुखारविन्दसे 'मानस-प्रवचन' सुनें। परम कौतुकी महाराजने शर्त रख दी—'एक मासका अखण्ड नाम-संकीर्तनका आयोजन करो तो मैं अपना मौन एक दिनके लिये मानस-प्रवचन-हेतु तोड़ सकता हूँ।' कहनेकी देर थी, करनेमें भक्तोंने विलम्ब नहीं किया। 'मानस' इन्हें कण्ठस्थ हो गया था। एक बार एक मासके अखण्ड नाम-संकीर्तनके समापन-अवसरपर श्रीमहाराजने 'मानस-प्रवचन' किया और सारी रात बोलते रहे, किसीको समयका भान नहीं था। सब मन्त्र-मुग्ध हो सुनते रहे। ऐसा था इनका 'मानसप्रेम' और ऐसी थी इनके भक्तोंकी अपने श्री-महाराजके प्रति श्रद्धा और भक्ति।

भगवन्नाम-जप और संकीर्तनमें श्रीमहाराजकी निष्ठाके अनेक प्रसङ्ग इनके जीवनकालमें इनके भक्तों और श्रद्धालुओंने देखा। एक बार श्रीमहाराजके पैरमें एक फोड़ा हो गया, जो अधिक बढ़ गया। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि उसकी शल्य-चिकित्सा कराना अत्यन्त आवश्यक हो गया। जहाँतक श्रीमहाराजका प्रश्न था ये तो देहातीत-स्थितिमें थे और इन्हें इस सबके लिये समय ही कहाँ था। इनके संसारमें तो ये थे और इनके भगवान्। ऐसी स्थितिमें भक्तोंके अत्यधिक आग्रह करनेपर ये चिकित्सकको दिखानेके लिये प्रस्तुत हुए। चिकित्सकने शल्य-चिकित्साकी अनिवार्यता बतलायी। पहले तो श्रीमहाराजने ऐसी झंझटमें पड़ना स्वीकार नहीं किया, परंतु बादमें अपनी एक शर्त रख दी कि मुझे बेहोश न किया जाय और शल्य-चिकित्साके अवसरपर सभी सम्बद्ध व्यक्ति भगवान्के नाम-संकीर्तनमें लगे रहें। संतोंकी हठ भी उन्हींजैसी विलक्षण होती है। चिकित्सकके सारे तर्क असफल रहे। श्रीमहाराजने लिखकर दे दिया—'यदि मुझे किसी प्रकारकी हानि होगी तो उसका दायित्व मुझपर होगा, चिकित्सक उसके लिये उत्तरदायी न होंगे।' बेचारे चिकित्सकको श्रीमहाराजकी शर्तपर ही शल्य-क्रिया करनी पड़ी। श्रीमहाराजने कहा—'पूरी तैयारी हो जानेपर मुझे सूचित कर देना।' शल्य-चिकित्सा प्रारम्भ होनेके पूर्व चिकित्सकके सूचित करनेपर श्रीमहाराजने एक बार 'हरे राम' उद्घोष किया और शल्य-क्रिया प्रारम्भ हो गयी, साथ ही भगवान्का नाम-संकीर्तन भी। जबतक शल्य-क्रिया चलती रही, प्रत्यक्षदर्शियोंके अनुसार श्रीमहाराज न तो हिले-डुले, न इन्होंने किसी प्रकारकी पीड़ाकी अभिव्यक्ति की। इनके मुखपर एक विलक्षण शान्ति विराजमान थी। शल्य-क्रियाकी समाप्तिपर चिकित्सकने मलहमपट्टी करके श्रीमहाराजको सूचित किया कि शल्य-चिकित्सा पूर्ण हो चुकी है। तब पुनः एक बार 'हरे राम'का उद्घोष हुआ और महाराज जैसे समाधिसे बाहर आये हों उसी प्रकार इनके मुखपर वही आनन्द और शान्तिकी अपूर्व छटा दिखायी पड़ रही थी। नाम-साधनाके ऐसे उदाहरण संतोंके जीवनमें ही दिखायी पड़ते हैं। नगरके सुप्रसिद्ध चिकित्सक अमीर खां साहब श्रीमहाराजकी मलहमपट्टी करने इनके निवास-स्थानपर आया करते थे। यद्यपि वे जातिके मुसलमान थे, तथापि श्रीमहाराजके आदेशानुसार वे जितनी देर मलहमपट्टी

करते, उतनी देरतक बड़ी श्रद्धा और तन्मयतासे श्रीहरेराम-मन्त्रका उच्च स्वरसे संकीर्तन करते जाते थे। वे कहा करते थे—'मुझे श्रीमहाराजके पास बैठने और संकीर्तनसे बड़ी शान्ति प्राप्त होती है।'

श्रीमहाराजकी दिनचर्याका प्रारम्भ फेरीसे होता था। प्रभातफेरी ४-३० बजेसे लगभग १०-११ बजे तक चलती थी। अनेक भक्तोंके साथ नगरके विभिन्न मार्गोंसे होते हुए उसका समापन महाराजजीके निवासस्थानपर ही होता था। मार्गमें अनेक भक्त श्रीमहाराजकी भक्तमण्डलीमें जुड़ते जाते थे और इस प्रकार एक अच्छा खासा जनसमूह इस कीर्तनमण्डलीमें प्रतिदिन भाग लेता था। भगवान्के बालविग्रहको नित्य प्रातः दस बजे भोग लगता था। एक बार श्रीमहाराज प्रभातफेरीमें तल्लीन थे, तभी मार्गमें ही भगवान् कौसलकिशोरने इन्हें प्रत्यक्ष होकर डाँट लगायी—'आप तो यहाँ कीर्तनमें मस्त हैं, नाच रहे हैं और मेरे प्राण भूखके मारे निकले जा रहे हैं।' इस प्रेममय फटकारको सुनते ही श्रीमहाराज भागते हुए घर पहुँचे तो विदित हुआ कि उलाहना ठीक था, उस दिन बेचारी माता ठीक समयपर भगवान्का भोग नहीं लगा सकी थीं। वृद्धावस्थाके कारण यह विलम्ब क्षम्य था, तथापि महाराजजी अपने भगवान्के लिये ऐसे व्याकुल हो उठे कि ये तुरंत भोगकी तैयारीमें जुट गये और इन्होंने अश्रु-पूरित नेत्रोंसे भगवान् कौसल-किशोरसे क्षमा-याचना करते हुए भोग अर्पित किया। इसके बाद फिर इस कार्यमें कभी विलम्ब न हुआ।

आगे चलकर श्रीमहाराजने संतोंका झंगा वस्त्र भी छोड़कर मात्र टाटकी एक लंगोटी और टाटका ही एक कौपीन रखा। नित्य नियमानुसार प्रभात-फेरीमें अब ये इसी वेशभूषामें दिखायी देते थे। एक विलक्षण बात यह भी देखी गयी कि बहुधा इनके आराध्यके आदेश इन्हें प्रभातफेरीमें ही प्राप्त हुआ करते थे, जिन्हें पूरा करनेके लिये प्रभात-फेरीमेंसे ही ये तुरंत चल देते थे। ऐसे ही एक अवसरपर ये प्रभात-फेरी कर रहे थे तो इन्हें एक विचित्र आदेश मिला। इनके भगवान्ने 'आम' खानेकी इच्छा व्यक्त की थी। भला कार्तिक-अगहनमें आम कैसे उपलब्ध किये जायँ! श्रीमहाराज अपने आराध्यकी इच्छा-पूर्तिके लिये चिन्तित हो उठे। बाजारमें अनुपलब्ध 'आम' कहाँसे प्राप्त होंगे, इसी चिन्तामें लीन ये नर्मदा-तटपर जा पहुँचे और सहसा छलांग लगाकर नर्मदाकी लहरोंको पार करते हुए दूसरे तटपर जा पहुँचे। वहाँ रेतीले मैदानमें एकान्त पाकर इनकी पीड़ा उच्च स्वरसे रुदनमें परिणत हो उठी। ये व्याकुल भावसे रेतमें लोटने लगे। इधर घरमें वृद्ध माता-पिता श्रीमहाराजकी बड़ी व्याकुलतासे प्रतीक्षा कर रहे थे, असाधारण विलम्ब सहज ही उन्हें चिन्तित कर रहा था। दोपहरको ढाई बजे, उसी समय एक मारवाड़ी सेठ श्रीमहाराजके दर्शनार्थ पहुँचे और उन्होंने माताजीसे अपनी इच्छा व्यक्त की। माताजीने कहा—'भैया प्रभात-फेरीमें गये हैं, अभीतक लौटे ही नहीं। तुम कौन हो? कहाँसे आये हो?' सेठने उत्तर दिया—'माताजी! मैं बहुत दूरसे श्रीमहाराजके दर्शन करने आया था। वे मुझे भली प्रकार जानते हैं, मैं फिर आ जाऊँगा। आप ये फल भगवान्को भोग लगा देना।' इतना कहकर वे पके आमके फल माताजीको सौंपकर चलते बने। बेचारी भोली-भाली माता कुछ समझ न सकीं, उन्होंने उन फलोंको श्रद्धासहित भगवान्को अर्पण कर दिया।

इधर सायंकाल चार बजेतक श्रीमहाराज उस एकान्त रेतीले मैदानमें बेसुध पड़े रहे और फिर घोर निराशा लिये हुए घर लौटे। घर आकर इन्होंने पुनः भगवान्के सामने बैठकर रोना प्रारम्भ कर दिया। माता दौड़ीं और बोलीं—'भैया! तुम अबतक कहाँ थे? एक मारवाड़ी सेठ तुम्हारे दर्शन करने आये थे, तुम मिले

नहीं तो भगवान्‌के नैवेद्यके लिये कुछ फल दे गये ।' ऐसा कहते हुए उन्होंने भगवान्‌को अर्पण किये गये नैवेद्यकी ओर इङ्गित किया । नैवेद्यमें रखे 'आमों' को देखकर श्रीमहाराज जैसे पागल हो उठे और फूट-फूटकर रोते हुए इन्होंने माँसे कहा—'माँ ! कहाँके सेठ आये थे ? वे कैसे थे ? तुमने उन्हें रोका क्यों नहीं ? साक्षात् भगवान् मुझ अकिञ्चनके द्वारपर आकर लौट गये और मैं अभागा उनके दर्शन भी नहीं कर पाया । मैं उस साँवलियाके दर्शनसे वञ्चित रह गया ।' इस प्रकार विलाप करते-करते इन्हें समाधि लग गयी । अखण्ड कीर्तनकार जोर-जोरसे कीर्तन करने लगे । बड़ी देर लगी श्रीमहाराजकी चेतना लौटनेमें ।

संतोंका जीवन तो जन-साधारणके लिये प्रेरणा-स्रोत है ही, उनकी पावन स्मृति भी न जाने कितनी पीढ़ियोंका हित-साधन करती रहती है । सन् १९५३-'५४ में पहली बार एक प्रसिद्ध संत श्रीसीताराम ओंकारनाथजी महाराज (बंगाली बाबा) होशंगाबाद आये थे । वे श्रीमहाराजकी भक्ति-साधनासे अत्यधिक प्रभावित हुए थे और बिना किसी पूर्वसूचनाके श्रीमहाराजसे मिलने इनके निवासस्थानपर फल-फूलआदि लेकर पहुँचे थे । श्रीनाना साहब हर्णे बतलाते हैं कि वह दृश्य अपूर्व था, जब दो उच्च कोटिके संतोंका मिलन हुआ । ऐसा लगता था कि तेजसे तेज मिला हो । कीर्तन-स्थलपर पहुँचकर बंगाली बाबा उस भूमिपर ऐसे लोट रहे थे जैसे कोई बालक भूमिपर लोटता है ।

श्रीमहाराजने २४ । १ । १९५८ तदनुसार शुक्रबार, माघ शुक्ल चतुर्थी संवत् २०१४ को लाभ एवं अमृतकी चौघड़ियामें शरीर छोड़ा । आज भी पतितपावनी नर्मदाके तटपर स्थित नगर होशंगाबादमें उन्हीं महान् संत श्रीहरेराम महाराजके द्वारा स्थापित 'श्रीहरेराम' अखण्ड संकीर्तन अखण्ड ज्योतिके साथ अनवरत चल रहा है, जिसे लगभग इक्यावन वर्ष पूर्ण हो चुके हैं । महाराजकी स्मृतिमें ही श्रीरामनाम-बैंककी भी यहाँ स्थापना की गयी है एवं नित्य प्रभातफेरी एवं दैनिक कीर्तन महाराजके भक्तोंद्वारा आज भी चलाया जा रहा है ।

राम-नामके अनन्य प्रेमी संत श्रीदेवादासजी

संत श्रीदेवादासजी रामस्नेही-सम्प्रदायके स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजके शिष्य थे । संवत् १८११ वि०के लगभग जयपुर राज्यमें आपका जन्म हुआ था । ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे पूर्ण आपका जीवन था । ये राम-नामके अनन्त प्रेमी थे । मनुष्यको राम-भजन छोड़कर मायामें उलझते देखकर इनका मन खिन्न हो जाता था । ये कहते हैं—

मनखा-देही पाय कियो नहिं चेत रे ।
राम-भजन कूँ भूल माया कूँ लेत रे ॥

राम-नामकी महिमा तथा राम-नाम-जपकी प्रेरणा देनेवाले कितने ही पदोंकी रचना आपने की है । आपके ये दोहे बड़े उपयोगी हैं—

रसना सुमिरे राम कूँ (तो) कर्म होइ सब नास ।
देवादास ऐसी करे, (तो) पावै सुक्ख-बिलास ॥
ररा-ममा को ध्यान धरि, यही उचारैं ग्यान ।
दुबिध्या तिमिर सहजैं मिटै, उदय भक्तिको भान ॥
जल तिरबे को तूँ बड़ा, भौ तिरबे कूँ राम ।
देवादास सब संत कह सुमरो आठूँ जाम ॥
तिरे, तिरावै, फिर तिरे, तिरताँ लगै न बार ।
देवादास रटि राम कूँ, बहुत ऊतर्‌या पार ॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

जाको राखै साइयाँ

यह घटना कुछ वर्ष पूर्वकी है, जो मेरी बड़ी बहनके साथ उनकी ससुरालमें घटी थी। उस समय उनके परिवारमें कुल छः सदस्य थे—वे स्वयं, पुत्र, पुत्रवधू, दो पौत्रियाँ और सबसे छोटा एक तीन वर्षीय पौत्र। उस वर्ष हमारे यहाँ इतनी अधिक वर्षा हुई कि चारों ओरकी भूमि जलमग्न हो गयी थी, जिससे कच्चे मकान ढहने लगे थे। मेरी बहन पौत्रको लेकर घरमें ही सोयी थीं। घर कच्चा ही था, परंतु उसके गिरनेकी सम्भावना नहीं थी। रात्रिका समय था, तेज वर्षा हो रही थी। अचानक घरकी छत उनके ऊपर गिर पड़ी। एक दर्दनाक चीख मुखसे निकली और वे मूर्छित हो गयीं। उनकी चीख तथा घर गिरनेकी आवाज सुनकर परिवारके सब सदस्य व्याकुलतापूर्वक वहाँ पहुँचे। उनका आधा शरीर मिट्टीसे दब गया था। मिट्टी हटाकर उन्हें बाहर निकाला गया और एक ओर चारपाईपर लिटा दिया गया। अब सबका ध्यान बच्चेकी ओर गया। उसका कहीं पता नहीं लगता था। उनके परिवारमें यही एकमात्र भावी वंशधर था। सब रोने लगे; क्योंकि बच्चेके बचनेकी आशा किसीको नहीं थी। बड़ी लड़की मिट्टी हटानेमें लग गयी। अचानक उसे लड़केका एक पैर दिखायी दिया। मृत समझकर वह लड़केको पैर पकड़कर बाहर खींच लायी। बाहर लाकर सबके सामने पृथ्वीपर रखकर जैसे ही उसने पैर छोड़ा, वह स्वयं उठकर बैठ गया, मानो सोनेसे जागा हो। उसकी माँने गोदीमें लेनेको हाथ बढ़ाया तो गोदीमें चला गया और पिलानेपर दूध भी पीने लगा। उस समय सबको कितनी प्रसन्नता हुई होगी, इसका अनुमान कोई सहृदय व्यक्ति ही लगा सकता है। घायल और क्लान्त दादीमाँको उनके पौत्रने ही झकझोरकर जगाया। पौत्रको देखकर उन्होंने हृदयसे लगा लिया और उस प्रसन्नतामें वे अपनी समस्त पीड़ा भूल गयीं।

दूसरे दिन समाचार मिलनेपर मैं भी देखने गया। बहनको तो बहुत चोट लगी थी, जिससे उसका प्रभाव लगभग पाँच-छः महीनेतक बना रहा; परंतु बच्चा एकदम बच गया था। वह घरके बाहर खेल रहा था और मुझे देखकर दौड़ता हुआ मेरे पास आया। पास आनेपर जब मैंने उससे यह पूछा कि 'तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी है;' तब उसने बताया था कि 'कैसे लगती? मुझे तो किसीने उठाकर उस खिड़कीमें बैठा दिया था।' जिस खिड़कीकी ओर उसने संकेत किया था, वह भगवान्‌का छोटा-सा पूजागृह था, जहाँ मेरी बहन भगवान्‌की पूजा नित्यप्रति करती थीं। बच्चेका उत्तर सुनकर तथा भगवान्‌की कृपाका स्मरण करके मैं गद्गद हो गया। भगवान् किसीकी रक्षा करते हैं तो उसे अपना आश्रय या सामीप्य तो प्रदान करते ही हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। वे ही सबके रक्षक हैं। उनके हाथ इतने लम्बे हैं कि चाहे जहाँ सबकी रक्षा करने पहुँच जाते हैं। मैं जब भी उस बच्चेको देखता हूँ, तब मुझे भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका स्मरण हो आता है। मैं उन सर्वरक्षक भगवान्‌को मन-ही-मन प्रणाम कर लेता हूँ।

—रामप्रसाद चिरंजीलाल अग्निहोत्री

(२)

रोगनाशक लेप

हमलोगोंने बहुधा यह सुना है कि पुराने वैद्यों तथा साधु-महात्माओंके पास ऐसी अद्भुत ओषधियाँ होती थीं, जिनसे वे पलक मारते-मारते भयंकर रोगोंका नाश कर देते थे। आधुनिक वैज्ञानिकोंने भी जिन्हें प्राण-घातक और असाध्य समझा वे भी ठीक हो जाते हैं। किंतु दुर्भाग्यवश हमारे पूर्वज

अपनी वे अद्भुत ओषधियाँ अपनी संतानों अथवा शिष्योंको नहीं बता गये। उन्होंने अपने ज्ञानको अपने ही हृदयमें छिपाये रखा, उसे किसी जीवित व्यक्तिपर प्रकट नहीं किया। अतएव वह प्राचीन ज्ञान उन्हींकी इहलीला-समाप्तिके साथ समाप्त हो गया। मेरे पास एक बड़ी चमत्कारी ओषधि है, जिससे केवल शारीरिक व्याधि ही नहीं, अपितु मनुष्यमें जितने रोगोंकी कल्पना की जाती है, वे सब-के-सब दूर हो सकते हैं। मैं उसे अपने जीवनकी सबसे मूल्यवान् निधि मानता हूँ, परंतु मैं उसे इस कारण प्रकट कर देनेके लिये उत्सुक हूँ कि कहीं उसकी भी प्राचीनकालके साधुओंके ज्ञानकी-सी गति न हो जाय। यह अद्भुत लेप सबको प्राप्त हो सकता है। इसका निर्माण भी सरल है। यद्यपि मैं अपने एक लेखमें यह कह चुका हूँ कि जीवनके भौतिक कष्टोंके निवारणार्थ भगवन्नामका प्रयोग करना पाप है, तथापि यह तो सत्य ही है कि प्रभुमें परम विश्वासके साथ किया हुआ नाम-जप-संकीर्तन जीवनकी भयंकरतम व्यथाओं और विपत्तियोंको दूर कर सकता है। दुर्दिनके आनेपर दुर्बल मानव विक्षिप्त होकर अपनी सुध-बुध खो बैठता है। ऐसी घड़ीमें सर्वशक्तिमान्में शाश्वत विश्वास होते हुए भी जपमें मनको नियोजित करना उसके लिये कठिन हो जाता है। मानव-मन उस समय किसी प्रत्यक्ष एवं प्रगाढ़ उपायको ढूँढ़ता है।

मेरे पास जो रोगनाशक लेप है, वह भगवन्नाम-संकीर्तन-जपका मूर्तरूप है। वस्तुतः यह जपका सार है। कुछ वर्ष पहलेकी बात है, मेरे पूज्य गुरुदेव श्रीबाबा गौराङ्गदासजी वृन्दावनसे मेरी कुटियापर पधारे और उन्होंने चौबीस घंटेका एक अखण्ड संकीर्तन करवाया। कीर्तन-कालमें भगवान्के सिंहासनके सामने अखण्ड दीपक जलता रहा। कीर्तन समाप्त हो जानेपर हमारे पूज्य गुरुदेवने दीपकसे एक काजल तैयार किया और बड़े प्यार तथा दुलार-भरे शब्दोंमें मेरी पत्नीसे आदेश-सा देते हुए कहा कि 'लल्ली! जब तुम्हारे बच्चोंमेंसे किसीको कोई कष्ट हो तो उसके मस्तकपर इस काजलका एक टीका लगा देना, वह एकदम ठीक हो जायगा।' तबसे अनेक बार मैंने इस पवित्र लेपका व्यवहार किया है और इसका चमत्कारी प्रभाव देखा है। कहा जाता है कि दुष्ट आत्माएँ इधर-उधर घूमा करती हैं। प्रायः छोटे बच्चोंको तंग करती हैं। बोल-चालकी भाषामें इसे झपटा कहते हैं। बच्चोंपर इसका भयंकर आक्रमण होता है और कभी-कभी तो उनके प्राणोंपर बन आती है। सन् १९४८की बात है। एक दिन आधी रातके समय अपने तीन वर्षके छोटे शिशुके करुण-चीत्कारसे हमलोगोंकी नींद खुल गयी, मानो कोई अदृश्य हाथ बच्चेको बिछावनपर उछाल रहा था। हमलोगोंने सोचा कि किसी विषैले जीव बिच्छू आदिने काट लिया है, अतः हमलोग उसकी पीड़ाके किसी ऐसे ही कारणको इधर-उधर ढूढ़ने लगे, किंतु कुछ हो, तब तो मिले। बच्चा लगातार यन्त्रणासे छटपटा और चिल्ला रहा था। तबतक मुझे गुरुदेवके उस काजलकी याद आयी और मैंने उसे बच्चेके मस्तकपर लगा दिया। कैसा आश्चर्य कि जैसे ही उसके मस्तकसे इस काजलका स्पर्श हुआ कि बच्चा चुप हो गया और उसकी पीड़ा रफूचक्कर हो गयी! मैंने इस काजलकी बार-बार परीक्षा की है और अमोघ पाया है।

मेरे एक पड़ोसीके, जो शिल्पी वर्गके हैं, कई बच्चे थे; पर सब मर गये। बेचारे स्त्री-पुरुष दोनों ही बहुत दुःखी थे। इस दुःखी दम्पतिको मैंने अपने पवित्र काजलके व्यवहारकी सम्मति दी। उन्होंने भगवान्में विश्वासपूर्वक इसका प्रयोग किया। उनकी उसके बादवाली संतान आज भी जीवित है। यह विलक्षण ओषधि मानव-की समस्त व्याधियों और दुःखोंका निवारण करती है।

इसे केवल उन्हीं लोगोंको देना चाहिये, जिनका भगवान्में और उनके दिव्य नाम-ज्ञानमें पूर्ण विश्वास हो।

दो वर्ष पहले मेरे पड़ोसीका विवाह होनेवाला था। बारात गुड़गाँवसे अमृतसर जा रही थी। दुर्भाग्यवश दूल्हेको जोरका ज्वर चढ़ा हुआ था, रातका समय था। मेरे मित्र पड़ोसीने चिन्ताके स्वरमें कहा कि यात्राके समयमें बालककी अवस्था और बिगड़ जायगी। उनके लिये अत्यन्त दुःखित होना स्वाभाविक था। मैंने अपनी दिव्यौषधिकी शरण ली और जब गाड़ी अमृतसर पहुँची, तब ज्वर उतरकर स्वाभाविक ताप हो गया था। यह देखकर मेरे पड़ोसी सरदार दलजीतसिंहजीने कहा कि इसने तो अद्भुत काम किया। इस दिव्यौषधिको मैंने कितनी बार परीक्षामें बैठनेवाले विद्यार्थियों तथा साक्षात्कार या नौकरी आदिके लिये अधिकारियोंसे मिलने जानेवाले लोगोंको भी दिया है और सदैव संतोषजनक फल प्राप्त हुआ है। मेरा ऐसा विश्वास है कि यदि कोई व्यक्ति नित्य प्रातःकाल इसे अपने मस्तकपर लगाकर जीवनक्षेत्रमें प्रवेश करे तो उसपर कोई आपत्ति नहीं आयेगी और उसका मार्ग निष्कलंक हो जायगा। सफलता उसकी चिरसंगिनी बन जायगी।

यह काजल उस दीपकसे बनता है जो कम-से-कम चौबीस घंटेके कीर्तनमें भगवान्के सामने अखण्ड जलता रहता है। तीन दिन अथवा नौ दिनके कीर्तनके बाद बना हुआ काजल और भी प्रभावशाली होगा। मेरा विश्वास है कि यह सबसे विलक्षण ओषधि होगी। दुःखसे भरे इस संसारमें जब विपत्तिके बादल मँडराने लगें तब दुखी इसके नीचे आश्रय ले सकते हैं। इस काजलको पवित्र तुलसीकी सूखी डालीसे लगाना चाहिये। जपके विषयमें एक बात और ध्यान देनेकी है। जीवन अल्प है, हमें इसका सर्वोत्तम उपाय कर लेना चाहिये। अतएव बिना किसी विलम्बके हम भगवन्नाम-जप आरम्भ कर देना चाहिये। भगवन्नाम-जप करनेवालेका मन शान्ति और सान्त्वनासे भर जाता है। जीवनकी भौतिक सुविधाओंसे प्राप्त होनेवाला आनन्द क्षणिक और अवास्तविक है, इसलिये हमें भगवन्नाम-जप और कीर्तनमें लगकर भगवत्प्राप्ति रूप मोक्षको प्राप्त कर लेना चाहिये, यही जीवनका एकमात्र परम साध्य है।

काजल बनानेकी विधि

जिन्हें भगवान् और उनके नाममें श्रद्धा-विश्वास हो, वे अपने यहाँ कम-से-कम चौबीस घंटेतक, हो सके तो तीन या सात दिनोंतक—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

—इन सोलह नामोंके मन्त्रका अखण्ड कीर्तन करायें। कीर्तनके स्थानपर भगवान्की मूर्ति या चित्रके पास शुद्ध घृतका दीपक रखें। दीपक अखण्ड रहे अर्थात् जबतक कीर्तन होता रहे तबतक बुझे नहीं और उस दीपकसे काजल बना लें। काजल बनाना गृहस्थमें प्रायः सभी जानते हैं। दीपकके ऊपर टेढ़ा सकोरा रख दें अथवा एक हाँडीमें पाँच-सात छेद करके उसे दीपकपर रख दें तो काजल बनता जायगा और दीपक बुझेगा नहीं। घी बीच-बीचमें दीपकमें देते रहें, आवश्यकता हो तो बत्ती भी बदलते रहें, पर ध्यान रखें, बत्ती बुझने न पाये। दूसरी बत्ती जला देनेपर ही पहलीको निकालें।

अखण्ड कीर्तनकी विधि यह है कि कम-से-कम दो-दो आदमी लगातार दो घंटेतक कीर्तन करते रहें, (आदमी कम हों और कर सकें तो चार घंटेतक दो आदमी ही कीर्तन करते रहें,) उनका समय पूरा होते ही दूसरे दो सज्जन आ जायँ। यों कीर्तन जारी रहे। दो

घंटे दिनमें और दो घंटे रातमें वही आदमी कीर्तन करें तो चौबीस आदमियोंसे अखण्ड कीर्तन हो सकता है । घरके, मुहल्लेके लोगोंको मिलकर कीर्तन करना चाहिये । स्त्रियाँ भी कीर्तन कर सकती हैं, परंतु उनके साथ पुरुषोंको नहीं रहना चाहिये । इस प्रकार कीर्तन करके काजल बनाया जा सकता है और श्रद्धा-भक्ति तथा विश्वास होगा तो वह काजल इस बताये हुए काजलसे कम महत्त्वका न होगा ।—अमरनाथ शर्मा

मनन करने योग्य

विट्ठल भगवान्‌की कृपा

बहुत समय पहलेकी बात है, महाराष्ट्रमें एक अत्यन्त प्रतापी राजा राज्य करता था । उसके राज्यमें प्रजा सुखी थी तथा प्रत्येक व्यक्तिको न्याय मिलता था । राजाने पूना नगरमें मनमोहन नामक व्यक्तिको अपना खजांची बनाया था । इसका जैसा नाम था, वैसा ही काम भी था । यह प्रत्येक आदमीके मनको मोह लेता था । मनमोहन बिट्ठल (विष्णु कृष्ण) भगवान्‌का बड़ा भक्त था तथा उसकी पत्नी भी उसीकी तरह तन-मन-धनसे बिट्‌ठल-भगवान्‌की पूजा किया करती थी ।

कुछ दिनों बाद वहाँ अकाल पड़ गया और प्रजा भूखों मरने लगी । चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी । मनमोहनसे यह सहन न हो सका । उसने खजानेका द्वार खोल दिया और प्रजासे मनमाना धन ले जानेके लिये कह दिया, जिससे प्रजाने संतोषकी साँस ली ।

मनमोहनके खजाना खोलते ही उसके शत्रुओंने राजाके पास जाकर उसकी शिकायत कर दी कि खजांचीने आपके खजानेको लुटा दिया है । राजाने ज्यों-ही यह बात सुनी त्यों ही उसने अपने सेनापतिको आज्ञा दी कि मनमोहनको तुरंत पकड़कर ले आओ । उसी समय सेनापति अपने साथ सिपाहियोंको लेकर मनमोहनको पकड़नेके लिये चल पड़ा । सेनापतिने पूना आकर मनमोहनसे कहा कि 'आपको कैद करनेकी आज्ञा हुई है । मैं आपको कैद करने आया हूँ ।'

जब मनमोहनने कैदकी बात सुनी, तब उसे किसी प्रकारका कोई दुःख न हुआ । उसने सेनापतिसे कहा कि 'मैं अपनी पत्नीसे मिल आऊँ, तब तुम मुझे कैद कर लेना ।' सेनापतिने उसे आज्ञा दे दी । मनमोहन अपनी पत्नीसे मिलने चल पड़ा । घर पहुँचनेपर उसने अपनी पत्नीसे अपने पकड़े जानेकी बात बतायी तथा पत्नीको अपने मायके चले जानेके लिये कहा । पत्नीने जब यह सुना, तब उसने अपने पतिदेवसे कहा कि 'मैं चाहती हूँ कि आपके साथ मुझे भी कैद कर लिया जाय, जिससे मैं आपकी सेवा करके अपने दिलकी आग बुझा सकूँगी ।' मनमोहनने कहा कि 'कैद करनेकी आज्ञा केवल मेरे लिये हुई है, इसलिये तुम्हें कोई कैद नहीं करेगा । तुम अपने मायके चली जाओ । छूटकर आनेपर मैं तुम्हें तुम्हारे मायकेसे ले आऊँगा ।'

मनमोहनकी पत्नी यह बात सहन न कर सकी । वह भगवान्‌की मूर्तिके पास जाकर फूट-फूटकर रोने लगी तथा प्रार्थना करने लगी कि 'मुझे भी कैद कर लिया जाय ।' प्रार्थना करते-करते वह भगवान्‌की मूर्ति तथा उसके ऊपर जो हीरे-जवाहरात जड़े थे, उसे उठाकर भागने लगी । उसे भागते देखकर किसीने सेनापतिसे जाकर कह दिया कि 'खजांचीकी पत्नी सोना चोरी कर अपने मायके जा रही है ।' इतनी बात सुनते ही सेनापतिने खजांचीके साथ उसकी पत्नीको भी कैद कर लिया । अपने कैदकी बात देखकर वह फूली न समायी । फिर

दोनों सेनापतिके साथ राजाके दरबारकी ओर चले। कुछ दूर जानेपर रास्तेमें बिट्ठल भगवान्‌का मन्दिर पड़ा। उसे देखकर खजांचीने सेनापतिसे प्रार्थना की कि 'हमें इस मन्दिरमें प्रणाम कर लेने दो, फिर हमें ले चलना।' सेनापतिने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। दोनों पति-पत्नी मन्दिरमें जाकर भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे—'भगवन्! हमें इस दुविधासे बचा दो और राजाका ऋण हमारे सिरसे उतरवा दो।'

उनके पूजा करते-करते भगवान् एक नीच व्यक्तिका रूप धारणकर राजाके पास पहुँचे और कहने लगे—'मेरा नाम बिट्ठू है। खचांचीने मुझे आपका ऋण चुकानेके लिये ये अशर्फियाँ दी हैं। आपका जितना ऋण है उतना आप इस पोटलीमेंसे निकाल लें और खजांचीको कैदसे मुक्त कर दें।' राजा उस बिट्ठूको देखता ही रह गया। उसकी दृष्टिमें अँधेरा छा गया। किसी प्रकार अपने मनको धीरज देकर उनने बिट्ठूसे कहा कि 'अशर्फियाँ गिनवाकर, रसीद लेकर वापिसीमें मुझसे मोहर लगवाकर तब जाना।'

राजाका नौकर अशर्फियाँ गिनने लगा, किंतु वह जितनी अशर्फियाँ उसमेंसे निकालता उतनी ही उसमें उसे और दीखतीं। अशर्फियाँ समाप्त होनेका नाम ही नहीं लेती थीं। अन्तमें हारकर उस नौकरने बिट्ठूको रसीद लिखकर दे दी और बिट्ठूरूपी भगवान् रसीद लेकर राजासे मोहर लगवाकर चल दिये। राजा बिट्ठूको देखता ही रहा। प्रभु राज्यसे निकलते ही लुप्त हो गये। उनके लुप्त होते ही राजा विचलित हो उठा। वह उन्हें देखनेके लिये अपना घोड़ा तैयार करवाकर चल पड़ा, पर प्रभु अब उसे कहाँ दिखायी दें।

राजाने सोचा वह बिट्ठू खजांचीके पास ही गया होगा, इसलिये वह खजांचीके पास चल दिया। उधर खजांचीको पूजा करते-करते जब बहुत देर हो गयी, तब सेनापतिने उन्हें अब लानेके लिये कहा। दोनों पति-पत्नी पूजा समाप्त करके उनके साथ चलने लगे। थोड़ी ही दूर जानेपर उन्हें राजा घोड़ा दौड़ाते हुए अपनी ओर आता दीख पड़ा। सेनापति और उसके सिपाही राजाको देखकर डर गये, किंतु मनमोहनने उसे किसी प्रकार सान्त्वना दी और सेनापतिने सुखकी साँस ली।

राजाने पास आते ही सेनापतिसे खजांची तथा उसकी पत्नीको छोड़ देनेके लिये कहा। राजाका कहना था कि सब-के-सब राजाकी ओर आश्चर्यसे देखने लगे। फिर राजाने खजांचीसे कहा—'मुझे पहले उस बिट्ठूके दर्शन कराओ, जिसे तुमने अशर्फियाँ देकर मेरे पास अपना ऋण चुकानेके लिये भेजा था।' मनमोहनने तुरंत पूछा—'कौन बिट्ठू और कैसी अशर्फियाँ? मेरे पास अशर्फियाँ कहाँसे आयीं?'

राजाने बताया कि 'एक आदमी फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए मेरे पास अशर्फियोंसे भरी पोटली लेकर आया था तथा अपने-आपको बिट्ठू बतलाता था। वह कहता था कि मुझे मनमोहनने आपका ऋण चुकानेके लिये भेजा है।'

इतना सुनते ही मनमोहनने राजासे कहा—'तुम बहुत ही भाग्यशाली हो, जिसे बिट्ठल भगवान्‌के दर्शन हो गये तथा हम बहुत ही अभागे हैं, जो दर-दर भटक रहे हैं। अब मैं जा रहा हूँ और मुझे किसी प्रकारकी कोई नौकरीकी आवश्यकता नहीं है।' खजांचीके इतना कहते ही राजाके ज्ञाननेत्र खुल गये। वह खजांचीसे क्षमा-याचना करने लगा और अपने पुत्रको राज्य देकर खजांची तथा उसकी पत्नीके साथ तपस्या करने वनको चला गया।

—बी० कु० खुराना

संकीर्तनोंका विवरण

[गताङ्क पृ० ४६३ से आगे]

साप्ताहिक श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन

श्रीरामभद्र-सेवा मण्डल, भिलाईनगर (म० प्र०) में भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके आदर्शोंके अनुसार लोक-कल्याणार्थ प्रतिसप्ताह श्री भगवन्नाम-संकीर्तन, श्रीरामायण-पाठ, सत्संग तथा पूर्णिमाको श्रीरामयज्ञ और अखण्ड रामायण-पाठ भी होते हैं। भगवत्कृपासे मन्त्र-जप और मन्त्र-लेखन-कार्य भी चलते हैं तथा उत्तरोत्तर प्रगतिपर है; यथा—

(१) लगभग बावन लाख भगवन्नामलिखित कॉपियाँ श्रीअयोध्याजी भेजी जा रही हैं।

(२) अबतक स्थानीय भक्तोंसे करीब दो करोड़ मन्त्रों (हरे राम ······हरे कृष्ण०) का जप करवाया जा चुका है।

भविष्यमें भी ये सात्त्विक अनुष्ठान सुचारुरूपसे चलते रहें—यही परम कृपालु परमेश्वरसे प्रार्थना है।

संस्थापक—श्रीप्रेमनारायण शर्मा, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न

प्रातःकालीन संकीर्तन-परिक्रमा

सीमान्त राजस्थान और मध्यप्रदेशान्तर्गत अरावली पर्वत-श्रेणीमें सुरम्य शुकदेव-तीर्थ है। कहते हैं, महामुनि शुकदेवजीकी यह तपःस्थली है। यहाँ आशुतोष भगवान् शिव और शुकदेव मुनिकी भव्य मूर्तियाँ हैं। पर्वतकी कन्दरामें अजस्र गङ्गाजल प्रवाहित होता रहता है। बड़ा ही मनोरम दृश्य है।

यहाँसे कुछ दूरपर जावद नगरमें भगवान् लक्ष्मीनारायणजीका अत्यन्त कलात्मक मन्दिर है। सन् १९६२ में अष्टग्रही योग होनेसे समस्त भारत संत्रस्त हो उठा था, तब सकल आपद्‌हरणार्थ स्थानीय नागरिकोंने भगवन्नाम-संकीर्तन 'श्रीराम जय राम जय जय राम' की मधुर धुनसे प्रातः चार बजेसे पाँच बजेतक 'नगर संकीर्तन-परिक्रमा' प्रारम्भ की, जो भगवत्कृपासे आजतक अविरल रूपसे चालू है।

प्रेषक—श्रीभगवतीलाल ओझा

दैनिक संकीर्तन

श्री जय जय सियाराम अनुरागी-संकीर्तन-समाज छपरा (बिहार) यहाँ विगत चौवन वर्षोंसे प्रतिदिन सायं सात बजेसे रात्रिमें ग्यारह बजेतक मधुरनाम-संकीर्तन होता आ रहा है और आरती-प्रार्थनाके बाद प्रसाद-वितरण-कार्यक्रम होता है। श्रीलक्ष्मणजी महाराज (जय जय सियाराम) के सत्प्रयाससे आयोजित है।

प्रेषक—श्रीरघुवीरसिंह अनुरागी

दैनिक संकीर्तन और प्रभातफेरी

श्रीनीलकण्ठेश्वर महादेव-मन्दिर, ग्राम—मलारना चौड़ जि० सवाई माधोपुर (राज०)। महामन्त्र-संकीर्तन- 'हरे राम ······'हरे कृष्ण' प्रातः चार बजेसे नगर-परिक्रमा और विशेष पर्वोंपर अखण्ड संकीर्तन चल रहा है।

प्रेषक—पं० श्रीकृष्णचन्द्र शर्मा,

संयोजक—परलोकवासी पं० श्रीराधागोपालजी जोशी

'विश्व-संकीर्तन-परिवार'का प्रधान कार्यालय मथुरामें है। इसकी बहुत-सी शाखाएँ विभिन्न प्रदेशोंमें संकीर्तन-सत्कार्यरत हैं; परिवारजनोंमें बहुत उत्साह है, इस कारण विभिन्न प्रान्तों और स्थानोंमें नवीन शाखाएँ गठित होती जा रही हैं। विदेशोंमें भी आयोजनोंके लिये यह संस्था प्रयत्नशील है। शाखाओंमें दैनिक-साप्ताहिक संकीर्तनके अतिरिक्त विशेष पर्वों और उत्सवोंपर अखण्ड संकीर्तन भी आयोजित किये जाते हैं।

प्रेषक—मुख्य संचालक

पंजाब—होशियारपुर

वेद-शास्त्रोंके निष्कर्षको विचारकर होशियारपुर (पंजाब) के संकीर्तन-प्रेमी भक्तोंने विक्रम सं० २००७में श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डलीकी स्थापना की, जो भगवन्नाम-संकीर्तन करती हुई उन्नतिके पथपर अग्रसर है। इस मण्डलीका मुख्य उद्देश्य भगवत्संकीर्तनका प्रचार एवं प्रसार करना है। श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डली प्रतिवर्ष नव संवत्सरारम्भसे पूर्व दो सप्ताहका विशेष-संकीर्तन-सम्मेलन आयोजित करती है।

'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव ॥'—श्रीहरिनामका बहत्तर घंटेका अखण्ड संकीर्तन होता है। देशके कोने-कोनेसे मानस-राजहंस-व्यास तथा विद्वान् उपदेशक बुलाये जाते हैं।

सम्मेलनके अन्तर्गत भगवान् मुरली-मनोहर राधेश्यामजीकी रथयात्रा भी निकलती है।

इसकी तीन शाखाएँ अपने-अपने क्षेत्रोंमें संकीर्तनका प्रचार करती हैं, जिनके नाम ये हैं—

(१) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डली, चौक बाजार, जगाधरी (हरियाणा)।

(२) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डली, शाह कोट, जि० जालन्धर (पंजाब)।

(३) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डली, कालिन्दी ड़ी—१८ नयी दिल्ली।

पंजाबमें सात संकीर्तन-मण्डल और हैं, जो संकीर्तनका अच्छा प्रचार करते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डल, होशियारपुर ।

(२) श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन-मण्डल, मन्दिर श्रीलक्ष्मी-नारायण, होशियारपुर ।

(३) श्रीकृष्णचैतन्य-संकीर्तन-सभा, जालंधर ।

(४) श्रीसनातनधर्म-राम-संकीर्तन-मण्डल, सखी-मन्दिर, लुधियाना ।

(५) श्रीप्रेम-संकीर्तन-मण्डल, इलायचीगिरमन्दिर, लुधियाना ।

(६) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डल, सिद्धपीठ, लुधियाना ।

(७) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डल, सतलजफ्लोर-मिल्स, लुधियाना । प्रेषक—पं० श्रीपरीक्षितराज शर्मा

नियमित संकीर्तन

बरनाला नगर (पंजाब) की प्रसिद्ध संस्था ॐ सत्-सनातन गीता-भवन ट्रस्टद्वारा विगत दस वर्षोंसे प्रतिवर्ष महामन्त्र 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' का एकतालीस दिनोंका अखण्ड संकीर्तनका आयोजन किया जाता है । श्रीरामनवमी, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, शिवरात्रि आदि महापर्वोंपर भी अखण्ड संकीर्तनके विशेष आयोजन होते हैं ।

स्थानीय श्रीरामायण-प्रचार-समितिद्वारा प्रतिरविवार-को मानस-प्रेमियोंके यहाँ अखण्ड रामायण-पाठ एवं अखण्ड संकीर्तन होता है ।

श्रीगीता-जयन्तीपर अखण्ड संकीर्तन

ग्राम—भला, पत्रालय-तान्दी, जि०-कुल्लू (हि० प्र०)में गत तीन वर्षोंसे श्रीगीता-जयन्तीके पावन पर्वपर अखण्ड हरिनाम-संकीर्तनका आयोजन किया जाता है । प्रति-मंगलवारको भी संकीर्तन-प्रेमी भक्त संकीर्तनका आनन्द लेते हैं । प्रेषक—श्रीवीरसिंह वैष्णव

भारतके पूर्वी राज्य मणिपुर प्रदेशके निम्नलिखित स्थानोंपर मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और अखण्डरूपसे हरि-संकीर्तन चलते हैं । उन स्थानोंकी नामावली इस प्रकार है—

रामकृष्ण-कीर्तन-मण्डली— हाति खुबा;
विश्व-सनातन-कीर्तन-मण्डली— शान्तिपुर;
साइ-मण्डली-कीर्तन— काङ्लातोम्बी (मन्दिर);
विश्व-सनातन-हरिकीर्तन-मण्डली—चार हजारे मन्दिर;
कृष्णकीर्तन-मण्डली— मोदुबुङ्ग;
बालकीर्तन-संघ— अपर चार हजारे;
श्यामकीर्तन-मण्डली— चार हजारे;
रामकीर्तन-संघ— चार हजारे;
सेलोइ हरिकीर्तन-संघ— सेलोइ चार हजारे;
बीजहरिकीर्तन-मण्डली— चुराचन्दपुर;
लक्ष्मी-कीर्तन-मण्डली— इराङ्भाग।(दस माइल);
सनातन-सत्संग-संकीर्तन-मण्डली— काला पहाड़;
सनातन-हरिकीर्तन-मण्डली— सैरो नं० ३;
श्यामसुन्दरकीर्तन-संघ— सैरो नं०;
लक्ष्मीपुर सनातनकीर्तनमण्डली— लक्ष्मीपुर (फुदाप);

और—

बोकुल, गेलजाहाङ्, सेकेन, लम्पेजुङ्, कैरेनर्चा, ल्याङ्लाकोट, हेमसि, बोल्फोट, वाइसाङ्, साइसाङ्चुरा चन्दपुर । इनके अतिरिक्त कोपाक (पुखोउ) (मोरे) वर्मा सीमाके समीपमें भी साप्ताहिक आधा घंटा अखण्ड हरिकीर्तन होता है । प्रेषक—श्रीदेवीप्रसाद ढुंगेल, सैरो धौबाल

संकीर्तन-स्थानोंकी नामावली

प्राप्त सूचनाओंके अनुसार जहाँ दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक और विशेष पर्वोंपर संकीर्तन होते हैं, उन स्थानोंकी नामावली इस प्रकार है—

(१) श्रीमारुति-सीताराम-ध्यान-मन्दिरम्, राज-महेन्द्री (आन्ध्रप्रदेश), (२) श्रीसनातनधर्म-सभा श्रीनारायण-भजनाश्रम-सभा-भवन, हैदराबाद (आ० प्र०), (३) श्रीहनुमानजीका मन्दिर, मिठौराबाजार, निचलौल, गोरखपुर (उ० प्र०), (४) श्रीभगवान-भजनाश्रम, बृन्दावन (मथुरा) (उ० प्र०), (५) विश्व-संकीर्तन-परिवार, प्रधान कार्यालय, मथुरा (उ० प्र०), (६) श्रीठाकुरद्वार-मन्दिर, शाहपुर जि० मुजफ्फरनगर, (उ० प्र०), (७) भगवान् शंकर और हनुमानजीका मन्दिर, जलालपुर, जि० प्रतापगढ़, (उ० प्र०), (८) श्रीबजरंग-संकीर्तन-मण्डल, जलालाबाद जि० शाहजहाँपुर, (उ० प्र०), (९) श्रीबजरंग-मन्दिर, ग्राम—जमुआ, पत्रालय-बसना, (जि० इलाहाबाद), (उ० प्र०), (१०) श्रीराधाकृष्णमन्दिर, स्थान—शिवराजपुर, जि० कानपुर, (११) पत्रालय—नाहिल, जि० शाहजहाँपुर, (उ० प्र०), (१२) श्रीगुरु-काशीनाथ-संकीर्तन-मण्डल, झाँसी, (उ० प्र०), (१३) मन्दिर बाबा कबूतरनाथ, पत्रालय—गोपीगंज, (वाराणसी) (उ० प्र०), (१४) श्री हरे

राम हरे कृष्ण-भावनामृत-संघ, घण्टाघर, मिर्जापुर (उ० प्र०), (१५) श्रीराम-दरबार, रेलवे पुल, एटा (उ० प्र०), (१६) श्रीव्रजकिशोरजी महाराजका मन्दिर, आगरा (उ० प्र०), (१७) श्रीरघुनाथजी-संकीर्तन-मण्डली, पक्षीत (दानपुर), कटक (उत्कल प्रदेश), (१८) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डली, कालिन्दी, डी—१८ नयी दिल्ली, (१९) नवजीवनविहार, नयी दिल्ली, (२०) एल—६० सरोजिनी-नगर, नयी दिल्ली, (२१) श्रीरामायण-प्रचारिणी-सभा, कूँचा चेलान, खारी बावड़ी, दिल्ली, (२२) श्रीराम-मन्दिर, केवलपार्क, आजादपुर, दिल्ली, (२३) गिरनार पर्वत, जूनागढ़ (गुजरात), (२४) जेरठ, जि० दमोह (म० प्र०), (२५) छुरकी, जि० सिवनी (म० प्र०), (२६) श्रीमानस-मन्दिर, ढाना, (सागर) (म० प्र०), (२७) श्रीदत्तोपासना-मन्दिर, मिरज शहर, (२८) श्रीगीता-मन्दिर सेवा-केन्द्र, हरदा (म० प्र०), (२९) श्रीलक्ष्मी-नारायणजीका मन्दिर, जावद (म० प्र०), (३०) कामवी, मुर्गीढाना, पत्थरकुटी, जुन्हैटा, तह० वनखेड़ी, जि० होशंगाबाद (म० प्र०), (३१) श्रीगीताभवन-सत्संग-समिति-न्यास (संस्थापक—ब्रह्मलीन संत श्रीकृष्णानन्दजी महाराज), शिवपुराकलाँ, जि० मुरेना (म० प्र०), (३२) श्रीबाँकेविहारीजी-मन्दिर, श्रीप्रभातनगर-परिक्रमा-संकीर्तन-मण्डल, खुरई (म० प्र०), (३३) श्रीरामधुन-कीर्तन-मण्डल, सेमरा बुजुर्ग, जि० दमोह (म० प्र०), (३४) रायसिंहका बाग, लश्कर, ग्वालियर, (म० प्र०), (३५) देवगाणा-सत्संग-मण्डल, श्रीगोपाल-आश्रम, देवगाणा, वाया सिहोर, (भावनगर), (३६) श्रीहरिनाम-संकीर्तन मण्डली, शाहकोट, जालन्धर (पंजाब), (३७) श्रीहरिनाम संकीर्तन-मण्डल, होशियारपुर (पंजाब), (३८) श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन-मण्डल, मन्दिर श्रीलक्ष्मी-नारायण, होशियारपुर (पंजाब), (३९) श्रीकृष्णचैतन्य-संकीर्तन-सभा, जालधर (पंजाब), (४०) श्रीसनातनधर्म-राम-संकीर्तन-मण्डल, सखी-मन्दिर, लुधियाना (पंजाब), (४१) श्रीप्रेम-संकीर्तन-मण्डल, इलायचीगिर-मन्दिर, लुधियाना (पंजाब), (४२) श्रीहरिनाम संकीर्तन-मण्डल, सिद्धपीठ, लुधियाना (पंजाब), (४३) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डल, सतलज फ्लोर मिल्स, लुधियाना (पंजाब), (४४) श्रीहरिनाम-संकीर्तन-मण्डली, चौक बाजार, जगाधरी (हरियाणा), (४५) संकटमोचन पञ्चमुखी-हनुमान एवं रुद्रेश्वर महादेव-मन्दिर, तुलसीघाट, ग्राम—छुरियामटठा, पो० मोहतरा, तह० डिण्डोरी, जि० मण्डला (म० प्र०), (४६) श्रीहनुमान, दुर्गा, रघुनाथ और गीता-मन्दिर, फतेहाबाद (हरियाणा), (४७) श्रीराम-मन्दिर, मुँगेरघाट, शालीग्रामी बेगूसराय (बिहार), (४८) श्री जय-जय सियाराम अनुरागी-संकीर्तन-समाज, छपरा (बिहार), (४९) श्रीहनुमान-मन्दिर, परिवहन निगम, दुर्गास्थान रोड, दुमका (बिहार), (५०) ग्राम—जेरठ जि० दमोह (म० प्र०), (५१) भगवती दुर्गामन्दिर, ग्राम—भ्रमरपुर, बिहपुर थाना, भागलपुर (बिहार), (५२) स्थान—बड़वानी (प० निमाड़) (म० प्र०), (५३) ग्राम—पटना, पत्रालय—जसो, जि० सतना (बिहार), (५४) ठाकुरवाड़ी, सूर्यगढ़ा, जि० मुँगेर (बिहार), (५५) श्रीराममन्दिर, न्यू मार्केट, पटना (बिहार), (५६) ब्रह्मलीन श्रीगरीबनाथजी परमहंस-आश्रम, पापड़ी मार्ग, विराटनगर (राजस्थान), (५७) श्रीनीलकण्ठेश्वर महादेव-मन्दिर, ग्राम—मलारना चौड़, जि० सवाई माधोपुर (राजस्थान), (५८) श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर, श्रीरेजड़ीमाताका मन्दिर और शिवालय, स्थान-पत्रालय—काजड़ा, जि० झुँझुनू (राजस्थान), (५९) श्रीरामायण-मण्डल, श्रीचारभुजाजीका मन्दिर, ग्राम—कनेछनकलाँ, तह० शाहपुरा, जि०—भीलवाड़ा (राजस्थान), (६०) श्रीरामभद्र-सेवा-मण्डल, भिलाईनगर (म० प्र०), (६१) श्रीराममन्दिर, पूना (महाराष्ट्र); (६२) साल्टलेक स्थान, कलकत्ता (बंगाल), (६३) श्रीराधाकृष्ण-संकीर्तन-मण्डली, स्थान—लाटबसेपुरा, जि० समस्तीपुर (बिहार), (६४) श्रीमहावीर-संकीर्तन-मण्डली, उदापट्टी, पत्रालय—बथुआ बुजुर्ग जि० समस्तीपुर (बिहार), (६५) श्रीदास हनुमानजीका मन्दिर, मलेकपुर, जि० पंचमहल (गुजरात), (६६) श्रीजीणमाताजीका मन्दिर, जि० सीकर (राजस्थान), (६७) श्रीपहाड़ीमाताका मन्दिर, ग्राम—पहाड़ी, पत्रालय—नकीपुर, (जि० भिवानी) (हरियाणा), (६८) उतरवारी पोखरा, मिर्जा टोला, बेतिया (बिहार), (६९) ग्राम—भला, पत्रालय—तान्दी, जि० कुल्लू (हिमाचल प्रदेश), (७०) ग्राम—केनापारा (भैयाथान), जि० सरगुजा (म० प्र०), (७१) श्रीमहावीर-स्थान, त्रिकुंज और नवकुंज, ग्राम—जंगेली, जि० पूर्णियाँ (बिहार), (७२) स्थान—बाँकीपुर, पटना (बिहार), (७३) स्थान—गोहना, (बिहार) और (७४) बेतिया (नालिया)

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणस्य सुन्दरकाण्डम् (मूलमात्रम्)

[नवीन प्रकाशनके रूपमें चिरप्रतीक्षित आवश्यकताकी पूर्ति]

नित्य पाठके लिये उपयोगी, अति सुन्दर गुटकाकार, सजिल्द-प्रति, जिसमें अनुष्ठान-विधि एवं सिद्ध-सम्पुट-मन्त्र भी दिये गये हैं, प्रकाशित हो गया है। मूल्य ३.०० (तीन रुपये) मात्र, डाकखर्च ३.२० अलग। इच्छुक सज्जन मँगाकर लाभ उठा सकते हैं।

गीताप्रेसकी फुटकर पुस्तकें खरीदनेवाले सज्जनोंसे आवश्यक निवेदन

जो सज्जन गीताप्रेसकी फुटकर पुस्तकें खरीदना चाहते हैं, उनसे नम्र निवेदन है कि वे कृपया अपनी इच्छित पुस्तकें अपने यहाँके (स्थानीय) गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रेताओंसे ही खरीदें। इससे उन्हें डाक-खर्चकी बचत तो होगी ही, मनपसंद पुस्तकें शीघ्र और सुव्यवस्थित भी मिल सकेंगी। यदि किन्हीं अनिवार्य कारणोंसे किन्हीं सज्जनोंको सीधे गीताप्रेस (गोरखपुर) से ही पुस्तकें मँगानी आवश्यक हो तो उन्हें चाहिये कि वे पुस्तकोंके आर्डरके साथ ही अपनी वाञ्छित पुस्तकोंका मूल्य भी डाकखर्चसहित यहाँ अवश्य भेज दें। ऐसा करनेसे उनके आर्डरकी पुस्तकें यहाँसे शीघ्र और सुविधापूर्वक भेजी जा सकेंगी।

डाकखर्चसहित अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए बिना पुस्तकें भेजनेमें असुविधा होती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पुस्तक-विक्रय-विभाग, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५

'कल्याण'के ग्राहक महानुभावोंसे विनम्र अनुरोध

हमारे बार-बार अनुरोध करनेपर भी ग्राहक सज्जन 'कल्याण'के निमित्त भेजे जानेवाले मनीआर्डरोंपर गीताप्रेस पुस्तक-विक्रय-विभागका पता एवं पुस्तकोंके लिये प्रेषित-(राशिवाले) मनीआर्डरोंपर—'कल्याण' कार्यालयका पता लिख करके भेज देते हैं। यह असंगत और असुविधा जनक है। उदाहरणार्थ—'कल्याण'के निमित्त भेजे जानेवाले मनीआर्डरोंपर गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभागका पता होनेसे डाकघरद्वारा वे मनीआर्डर-('कल्याण' कार्यालयको देनेके बजाय) पुस्तक-विक्रय-विभागको दे दिये जाते हैं जहाँ नियमानुसार उनके रजिस्टरोंमें अङ्कित हो जानेके बाद वहाँ कार्यवाही-हेतु प्रस्तुत होते हैं। और, यदि मनीआर्डर-कूपनोंपर राशि भेजनेका उद्देश्य न लिखा हो तो उस स्थितिमें (राशि भेजनेका उद्देश्य अज्ञात बने रहनेसे) वे मनीआर्डर सम्बन्धित विभाग-(कल्याण-कार्यालय) को उपयुक्त समयपर प्राप्त नहीं हो पाते। पुनः प्रेषकके लिखनेपर ही उक्त राशि सही पतेपर प्राप्त हो पाती है। इस प्रक्रियासे अनावश्यक विलम्ब तो होता ही है, दुरूहता और द्विविधाकी स्थिति उत्पन्न होनेसे भूलकी भी अधिक सम्भावना रहती है। फलस्वरूप ग्राहक-सज्जनोंको अनपेक्षित असुविधा और कष्ट होता है, उन्हें अनावश्यक पत्राचार भी करना पड़ता है। जिसमें सम्बन्धित कार्यालयोंका व्यर्थ समय तथा शक्ति नष्ट होते हैं। अतएव सभी सज्जनों द्वारा पत्रों तथा मनीआर्डरोंपर उद्देश्यके अनुरूप सही पता—'कल्याण' के निमित्त पत्राचारमें—व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय एवं पुस्तकोंके लिये किये गये प्रेषणोंमें 'गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभाग' अलग-अलग अङ्कित किया जाना चाहिये। दोनों विभाग और दोनोंकी व्यवस्थाएँ अलग-अलग हैं।

'कल्याण' के उद्देश्यसे भेजे जानेवाले मनीआर्डरोंके साथमें पुस्तकोंके लिये भी कोई राशि नहीं भेजनी चाहिये और न पुस्तकें मँगानेके लिये गीताप्रेस, पुस्तक-विभागको भेजे जानेवाले मनीआर्डरोंके साथमें 'कल्याण'के निमित्त ही कोई शुल्क-राशि भेजनी चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गके आयोजनकी व्यवस्था है। यहाँ **परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके** वैशाख कृष्णपक्षमें (दि० २५ अप्रैलसे ८ मई १९८६के मध्य) कभी भी पधारनेकी बात है। अन्य साधु एवं विद्वान् भी पधारनेवाले हैं।

यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गी भाई लोग तथा माताएँ-बहनें अधिकाधिक संख्यामें सत्सङ्ग तथा भजनके पवित्र उद्देश्यसे गीताभवन पधारें। आमोद-प्रमोद (मनोरञ्जन) अथवा जलवायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर केवल सत्सङ्ग-लाभके उद्देश्यसे ही वहाँ जाना चाहिये एवं यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधक-जीवन बिताते हुए सत्सङ्ग, कथा-श्रवण आदिमें भाग लेना चाहिये।

जिन्हें नौकर, रसोइयाकी आवश्यकता हो, उन्हें यथासम्भव उनको अपने साथ लाना चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर, रसोइयोंका मिलना कठिन है। माताएँ-बहनें पीहर या ससुरालवालोंके (अथवा अन्य किसी निजी निकटके सम्बन्धीके) साथ ही वहाँ जायँ, अकेली न जायँ। अकेली जानेकी दशामें उन्हें स्थान मिलनेमें कठिनाई हो सकती है। गहने आदि जोखिमकी वस्तुएँ साथमें बिल्कुल नहीं ले जानी चाहिये। सत्सङ्गी भाइयोंको बहुत आवश्यक सामान ही साथमें लाना चाहिये तथा अपने सामानकी पूरी सँभाल स्वयं रखनी चाहिये। जहाँतक बन पड़े, छोटे बच्चोंको साथमें न ले जायँ। खान-पानकी वस्तुओंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, परंतु दूधके प्रबन्धमें बहुत कठिनाई है।

गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रेताओंको आवश्यक सूचना

हमारे यहाँ ऐसी सूचना प्राप्त हुई है कि गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित सत्साहित्य—पुस्तकों आदिपर छपे मूल्यको काटकर विक्रेताओंद्वारा अधिक मूल्य अङ्कित करके ग्राहकोंसे लिया जाता है। यह सर्वथा अनुचित और नैतिकताके विरुद्ध कार्य है। अतएव सभी पुस्तक-विक्रेताओंसे हमारा अनुरोध है कि वे गीताप्रेसकी गरिमाको ध्यानमें रखते हुए कृपया पुस्तकोंपर छपा मूल्य ही ग्राहक-महानुभावोंसे लेकर नैतिकताका निर्वाह करते हुए, सत्साहित्यके पवित्र प्रचार-कार्यमें सहयोगी बनें। ग्राहक सज्जनोंको भी चाहिये कि वे पुस्तकोंपर मुद्रित मूल्यसे अधिक कोई राशि विक्रेताओंको कदापि न दें।

व्यवस्थापक, **गीताप्रेस, गोरखपुर (उ० प्र०)**

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिकके सम्बन्धमें विवरण

१—प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,

२—प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,

३—मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये) जगदीशप्रसाद जालान,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

४—सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

५—उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय, पता—नं० १५१, महात्मा गाँधीरोड, कलकत्ता, (सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार) रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था।

मैं जगदीशप्रसाद जालान, गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

दि०—१—२—८६

जगदीशप्रसाद जालान
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये
प्रकाशक